ध्वनि विज्ञान और रूप विज्ञान

(Phonology and Morphology)

जय राम

ध्वनि विज्ञान एवं रूप विज्ञान

ध्वनि विज्ञान एवं रूप विज्ञान

(Phonology and Morphology)

जय राम

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5496-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भाषा की लघुत्तम इकाई स्वन है। इसे ध्वनि नाम भी दिया जाता है। ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा विज्ञान में स्वन के अध्ययन संदर्भ को 'स्वन विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय के योग से बना है। भाषा विज्ञान के गंभीर अध्ययन में ध्वनि विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गई है। इसके लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वन विज्ञान, स्वनिति आदि नाम दिए गए हैं। अंग्रेजी में उसके लिए Phonetics और Phonology शब्दों का प्रयोग होता है।

स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इसका पर्यायी शब्द फोनीम (Phoneme)है। Phoneme के लिए प्रयुक्त होने वाला 'स्वनिम' शब्द 'ध्वनिग्राम' की अपेक्षा कहीं अधिक नया है, किन्तु आजकल इसका ही प्रयोग चल रहा है।

स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न विषयों से संबंधित माना है। ब्लूमफील्ड और डैनियल जोन्स से इसे भौतिक इकाई के रूप में स्वीकार किया है। एडवर्ड सापीर इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। डब्ल्यू. एफ. ट्वोडल स्वनिम को अमूत काल्पनि इकाई मानते हैं। स्वन या ध्वनि-परिवर्तन से सदा अर्थ–परिवर्तन नहीं होता है, जब कि स्वनिम-परिवर्तन से अर्थ–परिवर्तन निश्चित है।

'रूप विज्ञान' भाषा विज्ञान की एक शाखा है, जिसके अध्ययन की केंद्रीय इकाई 'रूपिम' है। अंग्रेजी में रूप विज्ञान के लिए 'मार्फोलॉजी' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो 'Morph' और 'सवहल' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'मार्फ' के लिए हिंदी में 'रूप' शब्द का प्रयोग होता है और 'लॉजी' (सवहल) का अर्थ है- 'विज्ञान'। विभिन्न भाषावेत्ताओं ने रूप विज्ञान को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। आगे कुछ प्रमुख भाषाविदों की परिभाषाएँ उद्धृत की जा रही हैं-

नाइडा के अनुसार, "रूप विज्ञान रूपिम तथा शब्द-निर्माण में उसकी व्यवस्था का अध्ययन करता है"।

ब्लाक तथा ट्रेगर का मत है कि रूप विज्ञान शब्द-गठन का विवेचन करता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

-लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**ध्वनि विज्ञान**	**1**
	स्वनिम की परिभाषा, अवधारणा और भेद	3
	मुक्त वितरण	4
	स्वन विज्ञान–परिभाषा एवं स्वरूप	7
	भौतिक स्वन विज्ञान	12
	श्रवणात्मक स्वन विज्ञान	13
2.	**हिंदी की ध्वनि संरचना**	**15**
	हिंदी की ध्वनियाँ	17
	व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण	21
	उच्चारण स्थान	21
	हिंदी की ध्वनियाँ	31
3.	**रूप विज्ञान**	**37**
	रूप विज्ञान–स्वरूप एवं प्रकार	37
	रूप विज्ञान	38
	अध्ययन की विषयवस्तु	39
	रूपिम	39
	रूपिमिक प्रक्रियाएँ	41

मद और विन्यास 43
शब्द-वर्ग और व्याकरणिक कोटियाँ 44
रूप विज्ञान और स्वनिमविज्ञान 45
4. वाक्य और वाक्य के भेद 49
शब्दकोशीय अर्थ 49
5. भाषा विज्ञान 54
भाषा विज्ञान का इतिहास 54
मध्य युग 55
18वीं एवं 19वीं शती 56
20वीं शती 58
वर्णनात्मक भाषा विज्ञान 58
प्राहा स्कूल 59
कोपेनहेगेन स्कूल 60
लंदन स्कूल 61
अमेरिकी स्कूल 61
भौगोलिक भाषा विज्ञान 63
अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान 65
वर्तमान युग 66
भाषा विज्ञान 68
भाषा विज्ञान के अनेक नाम 76
इतिहास 76
सामान्य परिचय 77
साहित्य और भाषा-विज्ञान 84
मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान 85
भूगोल और भाषा-विज्ञान 86
इतिहास और भाषा-विज्ञान 87
भाषा विज्ञान तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्र 88
भाषा विज्ञान के क्षेत्र 88
शैली 90
भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ अथवा प्रकार 91
संरचनात्मक (गठनात्मक) पद्धति 92

रूपिमविज्ञान अथवा शब्दरूप प्रक्रिया 107
भाषा विज्ञान की अन्य शाखाएँ 109
व्युत्पत्ति शास्त्र 113
6. हिन्दी व्याकरण का इतिहास 126
अठारहवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण 127
बीसवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण 131
तुलनात्मक व्याकरण 133
भाषाशास्त्रीय अध्ययन 134
हिन्दी व्याकरण का काल विभाजन 134
7. व्याकरण की परिभाषा 136
व्याकरण के अंग 137
हिन्दी व्याकरण की विशेषताएँ 138
ध्वनि और लिपि 138
संसार का सर्वप्रथम व्याकरण 141

1

ध्वनि विज्ञान

भाषा की लघुत्तम इकाई स्वन है। इसे ध्वनि नाम भी दिया जाता है। ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा विज्ञान में स्वन के अध्ययन संदर्भ को 'स्वन विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है।ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय के योग से बना है। भाषा विज्ञान के गंभीर अध्ययन में ध्वनि विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गई है। इसके लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वन विज्ञान, स्वनिति आदि नाम दिए गए हैं। अंग्रेजी में उसके लिए Phonetics और Phonology शब्दों का प्रयोग होता है। इन दोनों शब्दों की निर्मितिग्रीक के 'Phone' से है। स्वन (ध्वनि) के अध्ययन में तीन पक्ष सामने आते हैं–

1. उत्पादक,
2. संवाहक,
3. संग्राहक।

स्वन उत्पन्न करनेवाले व्यक्ति या वक्ता को स्वन उत्पादक की संज्ञा देते हैं। संग्राहक या ग्रहणकर्ता श्रोता होता है, जो ध्वनि को ग्रहण करता है। संवाहक या संवहन करनेवाला माध्यम जो मुख्यत: वायु की तरंगों के रूप में होता है। स्वन प्रक्रिया में तीनों अंगों की अनिवार्यता स्वत: सिद्ध है। जब मुख के विभिन्न अंगों में से किन्हीं दो या दो से अधिक अव्यवयों के सहयोग से ध्वनि उन्पन्न होगी तभी स्वन (ध्वनि) का अस्तित्त्व सम्भव है। ध्वनि-उत्पादक अवयवों की भूमिका के अभाव में स्वन का अस्तित्त्व असंभव है।ध्वनि-उत्पादक अवयवों की

उपयोगी भूमिका के बाद यदि संवाहक या संवहन माध्यम का अभाव होगा, तो स्वनका आभास असम्भव है। माना एक व्यक्ति एक वायु-अवरोधी। irtight¼ कक्ष में बैठ कर ध्वनि करता है, तोवायु तरंग कक्ष से बाहर नहीं आ पाती और बाहर का व्यक्ति ध्वनि-ग्रहण नहीं कर सकता है। इस प्रकार स्वन प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

तृतीय अंग संग्राहक या श्रोता के अभाव में ध्वनि-उत्पादन का अस्तित्त्व स्वत: ही शून्य हो जाता है। इस प्रकारस्वन प्रक्रिया में वक्ता (उत्पादक), माध्यम (संग्राहक) तीनों का होना अनिवार्य होता है।

ध्वनि के सार्थक और निरर्थक दो स्वरूप हैं। भाषा विज्ञान में केवल सार्थक ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया में वायु मुख या नाक दोनों ही भागों से निकलती है। इस प्रकार ध्वनि को अनुनासिक तथा निरनुनासिक दो वर्गो में विभक्त कर सकते हैं। ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुख-विवर के साथ नासिका-विवर से भी निकलती है। उसे अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु केवल मुख-विवर से निकले उसे निरनुनासिक या मौखिक ध्वनि कहते हैं। ध्वनि की तीव्रता और मंदता के आधार पर उसे नाद, श्वासतथा जपित, तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। जब ध्वनि उत्पादन में स्वर तन्त्रियाँ एक दूसरे से मिली होती हैं तो वायु उन्हें धक्का देकर बीच से बाहर आती है, ऐसी ध्वनि को नाद ध्वनि कहते हैं, यथा-X, ?, T आदि। इसे सघोष ध्वनि भी कहते हैं। जब स्वर तन्त्रियाँ एक दूसरे से दूर होती हैं तो निश्वास की वायु बिनाघर्षण के सरलता से बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को 'श्वास' या अघोष कहते हैं। यथा D, R, i~ आदि। जब बहुत मंद ध्वनि होती है तो दोनों स्वर तन्त्रियों के किसी कोने से वायु बाहर आती है। ऐसी ध्वनि को जपितध्वनि कहते हैं।

भाषा-अध्ययन में स्वन विज्ञान का विशेष महत्त्व हैं क्योंकि अन्य वृहत्तर इकाइयों का ज्ञान इसके ही आधार पर होती है। इसके ही अन्तर्गत विभिन्न ध्वनि उत्पादक अवयवों का अध्ययन किया जाता है। स्वनों के शुद्ध ज्ञान के पश्चात शुद्ध लेखन को सबल आधार मिल जाता है। उच्चारण में होने वाले विविध संदर्भों के परिवर्तनों का ज्ञान भी सम्भव होता है।

स्वन विज्ञान में विभिन्न ध्वनियों के अध्ययन के साथ उनके उत्पादन की प्रक्रिया का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है। इसी अध्ययन क्रम में ध्वनि उत्पादक विभिन्न अंगों की रचना और उनकी भूमिका का भी अध्ययन किया

जाता है। ध्वनि गुण और उसकी सार्थकता का निरूपण भी किया जाता है। स्वन के साथ 'स्वनिम' का भी विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। भाषा की उच्चारणात्मक लघुत्तम इकाई अक्षर के स्वरूप और उनके वर्गीकरण पर भी विचार किया जाता है। समय, परिस्थिति और प्रयोगानुसार विभिन्न ध्वनियों में परिवर्तन होता रहता है। ध्वनि-परिवर्तनके संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने कुछ ध्वनि नियम निर्धारित किए हैं। इन नियमों के अध्ययन के साथ ध्वनि-परिवर्तन की दिशाओं और ध्वनि-परिवर्तन के कारणों पर विचार किया जाता है।

स्वनिम की परिभाषा, अवधारणा और भेद

स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इसका पर्यायी शब्द फोनीम (Phoneme)है। Phoneme के लिए प्रयुक्त होने वाला 'स्वनिम' शब्द 'ध्वनिग्राम' की अपेक्षा कहीं अधिक नया है, किन्तु आजकल इसका ही प्रयोग चल रहा है।

स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित माना है। ब्लूमफील्ड और डैनियल जोन्स से इसे भौतिक इकाई के रूप में स्वीकार किया है। एडवर्ड सापीर इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। डब्ल्यू. एफ. ट्वोडल स्वनिम को अमूत काल्पनि इकाई मानते हैं।स्वन या ध्वनि-परिवर्तन से सदा अर्थ–परिवर्तन नहीं होता है, जब कि स्वनिम-परिवर्तन से अर्थ–परिवर्तन निश्चित है।

स्वनिम उच्चारित भाषा की ऐसी लघुत्तम इकाई है, जिससे दो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट होता है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि स्वनिम का सम्बन्ध ध्वनि से है। ध्वनि का सम्बन्ध यदि उच्चारण से होता है, तो श्रवण से भी इसका अटूट सम्बन्ध होता है। यदि ध्वनि सुनी नहीं जाएगी तो उसका अस्तित्त्व भी संदिग्ध होगा। ध्वनि के उच्चारण तथा श्रवण-सम्बन्धों के ही कारण स्वनिम को शरीर-विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित कहा गया है, क्योंकि उच्चारण और श्रवण-प्रक्रिया यदि शरीर विज्ञान से सम्बन्धित होती है, तो संवहन-प्रक्रिया पूर्णत:भौतिक विज्ञान से।

किसी भी भाषा की मूलभूत ध्वनियाँ लगभग पन्द्रह से पचास तक होती हैं। इन्हीं ध्वनियों के निर्धारण पर स्वनिमका निर्धारण होता है। स्वनिम के ही माध्यम से ध्वनियों के मध्य अन्तर प्रदर्शित होता है। ज, न, प भिन्न-भिन्नस्वनिम हैं। इसलिए इनमें भिन्नता है। जान तथा पान का अन्तर स्वनिम की भिन्नता के

ही आधार पर होता है। यहाँ 'ज' तथा 'प' दो भिन्न सार्थक ध्वनियाँ हैं। इन्हीं भिन्न सार्थक ध्वनियों के आधार पर 'ज्ञान' तथा 'पान'में अर्थ भिन्नता भी है। इन्हीं सार्थक ध्वनियां को ध्वनि विज्ञान में स्वनिम कहते हैं। उन दो शब्दो की 'न' ध्वनियों में सूक्ष्म अन्तर है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति यदि एक ध्वनि को दो बार उच्चारण करेगा, तो उनमें सूक्ष्म अन्तर होना स्वाभाविक है, यथा–पान, जान, पानी, मनु, मीनू, माने, मानो आदि शब्दों की विभिन्न 'न' ध्वनियों में सामान्य रूप से कोई अन्तर नहीं लगता है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तन पर इन ध्वनियों में सूक्ष्म भिन्नता का ज्ञान होता है।स्वनिक रूप से यदि इनमें भिन्नता है, तो उच्चारण के स्थान, प्रयत्न तथा कारण आदि आधारों पर इनमें पर्याप्त समानता ही स्वनिम की अवधारणा का आधार है।

स्वनिम रेखांकन के लिए इस प्रकार का आधार अपनाते हैं–कमल को/क/म/ल

मुक्त वितरण

जब ध्वनि में अन्तर होने पर भी अर्थ–परिवर्तन न हो, तो उसे मुक्त वितरण कहते हैं। हिन्दी में स्वनिम के ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं। यथा–दीवार झ दीवान, गम झ गम।

यहाँ प्रथम शब्द में/र/–/ल और द्वितीय में/ग/–/ग/ध्वनियों के अतिरिक्त पूरा परिवेश समान है।इसके लिए ् चिन्ह का प्रयोग करते हैं। यथा– दीवार झ दीवाल/र्/ल।

किसी शब्द के आदि, मध्य और अन्त में प्रयुक्त होने पर यदि अर्थ – परिवर्तन हो, तो स्वनिम रूप निश्चित हो जाता है, यथा – आप शब्द के आदि और अन्त में 'ज' प्रयोग से अर्थ – परिवर्तित रूप इस प्रकार मिलते हैं–ज झ आज, जाप इस प्रकार 'ज' स्वनिम है।"ल" स्वनिम को इस प्रकार दिखा सकते हैं – आदि मध्य अन्त्य ल – – ल – – ल लखन कलम कमल

विशेषताएँ

स्वनिम भाषा की लघुत्तम इकाई है, यथा – अ, त, क, प आदि।

स्वनिम विभिन्न समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक ध्वनि का एक से अधिक या अनेक तरह से उच्चारण किया जाए, तो उसके लिए एक ही स्वनिम होगाय यथा– 'क' ध्वनि को दस व्यक्ति बोले या एक ही व्यक्ति

दस बार बोले तो इसके दस रूप होंगे, किन्तु इन दसों ध्वनि-रूपों के लिए एक ही स्वनिम होगा।

स्वनिम अर्थ- भेदक इकाई है, यथा- तन और मन शब्दों में अर्थ-भिन्नता त और म स्वनिमों की भिन्नताके कारण है। तन के न और मन के न के उच्चारण में सूक्ष्म भिन्नता अवश्य है, किन्तु दोनों एक हीस्वनिम से सम्बन्धित है, इसलिये इनसे अर्थ-भिन्नता नहीं होती है।

स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है। लिखित भाषा से इसका सम्बन्ध नहीं होता। लिखित भाषा में इसी प्रकार की इकाई लेखिम होती है। हिन्दी में क एक स्वनिम है जिसके लिये अंग्रेजी में कई लेखिमों काप्रयोग होता है, यथा- झ कैमल, ज्ञ झ काइट झ केमेस्ट्र, फनम झ चौक बा झ बैक आदि।

प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं, जो अन्य किसी भी भाषा के स्वनिम से भिन्न होते हैं। अर्थात् स्वनिमभाषा विशेष पर आधारित होते हैं, यथा - प, फ हिन्दी के स्वनिम हैं, जब कि अन्य भाषा में ये ध्वनियाँ भी हो सकती हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी भाषा के स्वनिमों से भिन्न किसी अन्य भाषा के स्वनिमों काप्रयोग करता है, तो उनके उच्चारण में कठिनाई आती है। ऐसे समय वह न स्वनिमों की भिन्नता के आधार पर विभिन्न भाषा-भाषियों की पहचान सम्भव है यदि हिन्दी में जल है तो बंगला में जॉल।

स्वनिम समपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं, त अघोष, अल्पप्राण, दन्त्य ध्वनि जब न के साथ प्रयुक्त होती है तो नासिक्य ध्वनि 'न' का प्रभाव उस पर पड़ जाता है-तन झ तँन।

सभी भाषाओं में ध्वनियों की एक निश्चित व्यवस्था होती है, जिसके आधार पर उनमें ध्वन्यात्मक संतुलनबना रहता है, यथा-हिन्दी के क, घ, छ, झ, ठ, ढ आदि स्वनिमों का ज्ञान हो तो स्वनिम-व्यवस्था के अनुसार अल्पप्राण-महाप्राण के क्रम के अनुसार 'क' वर्ग में 'घ' के अतिरिक्त 'ख' एक अन्य महाप्राणध्वनि की सम्भावना स्पष्ट हो जाएगी। इस प्रकार स्वनिम-व्यवस्था पूरी हो जाती है।

कभी-कभी दो ध्वनियाँ बिना अर्थ-परिवर्तन के एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं। यह प्रायः बोलियों की सहजीकरण की स्थिति में होता है, किन्तु यदा-कदा मानक उच्चारण में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं, यथा- क झ क झ खघ झ ख, ज झ ज (इल्जाम) प्रथम शब्द का अर्थ दोष है और द्वितीय का

अर्थ है- घोड़े के मुख में लगाम देना यहाँ दोनों ही शब्द समान 'दोष' अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं।

प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की संख्या भिन्न होती है।

"Once phoneme ever phoneme" यदि कोई ध्वनि एक बार निश्चित हो जाए कि स्वनिम है, तो वह सदा प्रत्येक स्थिति में स्वनिम होगी।

यदि कोई ध्वनि आदि, मध्य और अन्त में से किसी एक में मिले तो स्वनिम स्थिति विचारणीय है। हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती अंग्रेजी ध्वनियाँ च. ा की आदि स्थिति में क्रमशः चे, जे, ज्ञी हो जाती हैं, किन्तु मध्य और अन्त में पूर्ववत चजज्ञ रहती हैं।

आदि मध्य अन्य चे -च- -च जी -ज- -ज ी -ा- -ा

प्रवर्तित ध्वनि केवल आदि में है, इसके अर्थ में परिवर्तन भी नहीं होता। अन्त में स्वनिम नहीं है। मध्य तथा अन्त स्थिति में अधिक परिवेश में प्रयुक्त होने से च.ज.ा. स्वनिम हैं। ये ध्वनियाँ आपस में संस्वन हैं।

उपयोगिता

स्वनिम ज्ञान से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सरलता होती है। स्वनिम के माध्यम से ही किसी भाषा की मूल ध्वनियों का ज्ञान होता है। इस प्रकार भाषा-शिक्षण में स्वनिम ज्ञान का विशेष महत्त्व है।

स्वनिम उच्चरित भाषा से सम्बन्धित है। इनके माध्यम से भाषा की ध्वनियों की संख्या का नियन्त्रण होता है। इस प्रकार के नियन्त्रण से भाषा उच्चारण में समुचित व्यवस्था बनी रहती है। स्वनिम व्यवस्था से नई ध्वनियों के आगम पर उनका सीखना सम्भव और सरल होता है।

स्वनिम भाषा की अर्थ भेदक इकाई है। भाषा की अन्य इकाइयाँ–शब्द, पद, वाक्य आदि का ज्ञान तबतक सम्भव नहीं होता, जब तक स्वनिम का ज्ञान न हो, क्योंकि भाषा ही परवर्ती वृहत्तर इकाइयाँ स्वनिम पर आधारित हैं।

लिपि-निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात्ही लिपि का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते हैं। 5ण् आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है। जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपिचिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कहते हैं।

स्वनिम के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय लिपि (I-N-P-A) का रूप सामने आया है। सभी भाषाओं के विभिन्न स्वनिमों के लिए इसमें समुचित रूप से एक-एक चिन्ह की व्यवस्था होती है।इस प्रकार भाषा के शुद्ध उच्चारण, आदर्श लिपि और अन्तर्राष्ट्रीय लिपि निर्माण आदि में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

स्वन विज्ञान–परिभाषा एवं स्वरूप

जब भी हम कोई नई, अनजानी भाषा सुनते हैं तो हम उसके शब्दों के, वाक्यों के अर्थ को नहीं समझ पाते, लेकिन जो बोला जा रहा है, वह कोई भाषा है, इसमें हमें कोई संदेह नहीं होता। इससे यह साबित होता है कि विभिन्न ध्वनियों को सुनकर समझने की, बोलने की और किसी भाषा से उन्हें जोड़ने की क्षमता हमारे अंदर जन्मजात होती है। ध्वनि का यही ज्ञान इस पाठ का विषय है।

भाषा मुख्यतः वाचिक रूप में

भाषा को हम मूलतः लेखन से जोड़ते हैं या लिखित भाषा को हम प्राथमिकता देते हैं। लेकिन निरीक्षण से यह पाया गया है कि भाषा में प्राथमिकता उसके लिखित रूप की नहीं हैं, बल्कि स्थिति ठीक उसके विपरीत है। भाषा में प्राथमिकता बोलने की है और लेखन द्वितीयक (Secondary) है। निम्न तथ्यों से इसे समझा जा सकता है–

(क) भाषा सार्वभौमिक है, जबकि लेखन कुछ समुदायों (Communities) तक ही सीमित है। विश्व में, खासतौर से एशिया, अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया में ऐसी अनेक जनजातियाँ हैं, जहाँ किसी भी लिपि का इस्तेरमाल नहीं होता। ऐसा कह सकते हैं कि यहाँ लिखित भाषा का कोई प्रचलन नहीं है। भारत में भी कई जनजातियाँ, जैसे अंडमान द्वीप की 'जारवा' और 'ओंगे' जनजाति की अपनी कोई लिपि नहीं है। अर्थात ये भाषाएं सिर्फ बोली जाती हैं। इन जनजातियों के लोग देवनागरी लिपि में अब लिखना और पढ़ना सीख रहे हैं।

(ख) पढ़े लिखे और शिक्षित समाज में भी हम लिखने से बहुत पहले बोलना सीखते हैं।

(ग) मनुष्य के विकास के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि मनुष्य ने भाषा बोलना, लिखने के बहुत पहले ही सीख लिया था। लिपि या लिखने की प्रक्रिया बोलने की तुलना में बहुत बाद की है। जीव वैज्ञानिकों के अनुसार बोली जाने वाली भाषा का इतिहास 50,000 साल पुराना है, जबकि लिपि का सिर्फ 3,000 साल। (भारतीय परंपरा में यह बात मान्य नहीं है, लेकिन इसमें कोई विवाद नहीं कि लिपि वाचिक भाषा के बहुत बाद जनित हुई। बोलना हम स्वाभाविक तरह से सीख लेते हैं। छोटे बच्चों को माता-पिता बोलना सिखाते जरूर हैं, न भी सिखाएं तो भी बच्चा बोलना तो सीख ही लेता है, लेकिन लिखने की शिक्षा देनी पड़ती है।

इस तरह के अनेक तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य को 'बोलने और लिखने में' बोलना अपेक्षाकृत स्वाभाविक रूप से आता है।

स्वन विज्ञान के अध्ययन में यह आवश्यक है कि हम ध्वनि की प्रक्रिया और इकाइयों के अंतर को समझ लें। इन्हें दो प्रकारों के रूप में जाना जाता है खंडात्मक और अधिखंडात्मक।

खंडात्मक इकाइयाँ 'स्वर' और 'व्यंजन' होती हैं। 'स्वर' और 'व्यंजन' तो हम सब जानते हैं। 'स्वर' वह ध्वनि है, जो मुख-विवर में बिना किसी अवरोध के निकलती है। उदाहरण–'अ', 'ओ'।

'व्यंजन' वह ध्वनि है जिसकी उत्पत्ति के समय मुखविवर में अवरोध होता है। जैसे-'द्', 'ब्'।

खंडात्मक प्रकियाएँ एकल खंडों से संबंध रखती हैं। जैसे- 'अ', 'ड्'। दो स्व'रों के बीच जब 'ड्' आता है तो वह 'ड़्' हो जाता है। इस प्रक्रिया को उत्क्षिप्तीकरण कहते हैं। यह प्रक्रिया एकल ध्वानि से संबंध रखती है। जैसे–संस्कृत में, 'अघोष' व्यंजन, दो स्वरों के बीच में आते हैं तो वह 'घोष' हो जाते हैं–

सत्. आचार = सदाचार

वाक्. ईश = वागीश

इस प्रक्रिया को घोषीकरण कहते हैं। उत्क्षिप्तीहकरण और घोषीकरण प्रक्रियाएँ एकल खंडों से संबंध रखती हैं

ड् - ड़्

त् - द्

स्वर और व्यंजन के अलावा वाक् में ऐसी प्रक्रियाएँ भी होती हैं, जो एक साथ कई खंडों से संबंध रखती हैं। इसीलिए इन्हें अधिखंडात्मक कहा जाता हैं।

एक अधिखंडात्मक स्वनगुण तान है। एक शब्द के कई अलग अर्थों को बताने के लिए अलग सुरों के उपयोग को तान कहते हैं। उन भाषाओं को जिनमें एक शब्द के अनेक अर्थों को बताने के लिए कई अलग सुरों का उपयोग किया जाता है, तान भाषा कहते हैं। तान भाषा का सबसे अच्छा उदाहरण चीनी भाषा है। उस भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनमें स्वर और व्यंजन तो एक से ही हैं, लेकिन सुर अलग हैं। जैसे- 'मा'। इसका चार अलग तरह से किया गया उच्चारण चार अलग अर्थ–'माता', 'डाँट' 'भाग', 'घोड़ा' बताता है। भारतीय-आर्य भाषा, पंजाबी में विकसित सुर हैं। जैसे- 'कर' शब्द- को एक तरह से उच्चारित करें तो उसका मतलब 'करना' (किया) होता है तो दूसरी तरह से 'घर'।

भाषाई विश्लेषण के स्तर के रूप में स्वन विज्ञान और स्वनिम विज्ञान

ध्वनि का अध्ययन दो स्तरों पर किया जाता है–

(क) स्वन विज्ञान और (ख) स्वनिम विज्ञान स्वन विज्ञान का उद्देश्य किसी भी ध्वनि के भौतिक तथ्य- उच्चारण (मुख के अंदर), संचरण या प्रसारण (हवा में), और ग्रहण या प्रतिग्रह (कान और मस्तिष्क के द्वारा) का निरूपण करना है। ये भौतिक तत्त्व किसी भी शब्द में ध्वनि के स्वरूप का सामान्यीकरण करने में सहायक होते हैं। उदाहरण स्वरूप-'प्' और 'फ्'। ये दोनों ध्वनियाँ अंग्रेजी और हिंदी भाषियों की बोलियों में पाई जाती है। इनका भौतिक स्वरूप दोनों भाषाओं में लगभग एक-सा ही है। लेकिन अंग्रजी में, किसी शब्द के उच्चारण में ये ध्वनियाँ यदि पारस्परिक रूप से बदल जाएँ, तो भी शब्द के अर्थ पर उसका असर नहीं पड़ता। अत: ये ध्वनियाँ एक दूसरे का प्रकार समझी जाती हैं, अलग नहीं। हिंदी भाषा में इन ध्वनियों के अलग प्रयोग से शब्दों का अर्थ बदल जाता है, अत: ये एक ध्वनि का प्रकार नहीं, अलग ध्वनियाँ मानी जाती हैं।

स्वन विज्ञान और स्वनिम विज्ञान का दूसरा अंतर भी इन्हीं उदाहरणों से समझा जा सकता है। 'प्' और 'फ्' के ध्वन्यात्मक वर्णन इनके भौतिक स्वरूप को दर्शाते हैं, जो कि लगभग समान हैं, लेकिन इनका स्वनिम वैज्ञानिक वर्णन भिन्न होगा, क्योंकि इन ध्वनियों का संबंध अलग है। अंग्रेजी में इन ध्वनियों का स्वरूप परिपूरक होता है। शब्दों में कई संदर्भों में ये उपस्थित होती हैं। 'प' ध्वनि

हमेशा बलाघातित अक्षर (Stressed Syllable) में होती है, जबकि 'प्' बलाघातित अक्षर में कभी नहीं होता। हिंदी में ये ध्वनियाँ शब्दों के शुरू में भी होती हैं, तब शब्द का अर्थ बदल जाता है। जैसे– पल, फल।

जैसा कि पहले बताया गया है, ध्वनि के भौतिक रूप के अध्ययन के तीन पक्ष हैं– (1) उच्चारण, (2) प्रसारण, (3) प्रतिग्रहण। तदनुसार स्वन विज्ञान के भी तीन भाग हैं–

(1) उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान।

(2) भौतिक स्वन विज्ञान।

(3) श्रवणात्मक स्वन विज्ञान।

इन तीनों भागों के अध्ययन से ध्वनियों के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। उदाहरण के द्वारा इन्हें समझा जा सकता है। सबसे पहले हम उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान को लेते हैं। उदाहरणत: 'काम'। इस शब्द में तीन ध्वनियाँ है– 'क्', 'आ', 'म्'। (ध्यान रहे कि लिखित देवनागरी में प्रयुक्त अक्षर की अवधारणा, ध्वनि से भिन्न होती है और यहाँ हम ध्वनि की चर्चा कर रहे हैं।

ध्वनियों के उच्चारण में कौन से करण किस प्रकार से प्रयुक्त होते हैं, इसके अध्ययन के आधार पर स्वनिक नामपत्र का उपयोग होता है। ध्वनियाँ बड़े या छोटे समूह में हो सकती हैं। जैसे–प्, ब्, त्, द्, क्, ग्। इन्हें स्फोट कहते हैं। उनमें से प्, त्, क्, एक छोटा समूह है जिसे हम 'अघोष स्फोट कहते हैं। इसी प्रकार से हम इ, ई, उ, ऊ, को उच्च संवृत स्वर कहते हैं। ये नामपत्र उच्चारण के मुख्य गुणों पर आधारित हैं। इस बात पर खास ध्यान देना जरूरी होता है कि ये नामपत्र सभी प्रकार की ध्वनियों का वर्णन करते हैं। दो भिन्न ध्वनियाँ एक नामपत्र से नहीं जानी जा सकती हैं। जैसे- हमें प्, त्, क्, को अलग करना होगा, उसी प्रकार हमें इ, ई, उ, ऊ, को अलग करना होगा। उदाहरणत: हिंदी के प्, फ्, ब्, भ्, ध्वनियों के लिए चतुर्नामिक नामपत्र की आवश्यककता होगी–

प–अल्पप्राण, अघोष, ओष्ठ्य, स्फोट।

फ – महाप्राण, अघोष, ओष्ठ्य, स्फोट।

ब – अल्पप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, स्फोट।

भ – महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, स्फोट।

उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान भाषा ध्वनियों की उच्चारण–प्रक्रिया का अध्ययन करता है। इसमें उच्चारण में प्रयुक्त करण अर्थात वह चल अवयव जो

ध्वनियों के उच्चारण के समय विभिन्न स्थितियाँ ग्रहण करते हैं। यथा- जिह्वा और ओष्ठ आदि तथा उच्चारण स्थान अर्थात वह अचल उच्चारण अवयव जिसकी ओर करण या तो अग्रसर होता है या जिसका वह स्पर्श करता है, के आधार पर व्यंजनों का वर्णन और वर्गीकरण किया जाता है। संस्कृत व्याकरण ग्रंथों के अनुसार करण चल हैं और स्थान अचल- 'यद्उपक्रम्यते तत्स्थानम। येनोपक्रम्यते तत्करणम्'। इसी प्रकार करण किस प्रकार उच्चारण प्रक्रिया में प्रयुक्त होता है और श्वास के मार्ग में किस प्रकार का संकीर्णन करता है, यह भी उच्चारण प्रयत्न के रूप में व्यंजनों के वर्णन और वर्गीकरण का आधार बनता है। उच्चारण प्रक्रिया में प्रयुक्त करणों और उच्चारण स्थानों की जानकारी के लिए वागवयवों या वाग्यंत्र से परिचित होना आवश्यक है–

आपके सामने वाग्यंत्र का चित्र प्रदर्शित है। इस चित्र के निचले भाग में आप देख सकते हैं कि मुख की दिशा में आगे की ओर श्वास नलिका है, जिसमें से होकर श्वास फेफड़ों में पहुँचती है और उसी से प्रश्वास के रूप में बाहर निकलती है। भाषाओं की अधिकांश व्यंजन ध्वनियाँ प्रश्वास को बाधित करके ही उत्पन्न की जाती हैं।

श्वास नलिका के पीछे भोजन नलिका है, जो आमाशय तक जाती है। श्वास नलिका और भोजन नलिका को एक दीवाल अलगाती है। भोजन नलिका के विवर के साथ श्वास नलिका की ओर उन्मुख एक छोटी-सी जिह्वा है, जिसे अभिकाकल कहते हैं। भोजन या पानी आदि ग्रहण करते समय अभिकाकल श्वास नलिका को बंद कर देता है, ताकि भोजन या पानी श्वास नलिका में न जा सके।

अभिकाकल से कुछ नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला एक प्रधान अवयव, स्वरयंत्र है। स्वरयंत्र में पतली झिल्ली से बने दो परदे हैं, जिन्हें स्वरतंत्रियाँ या घोषतंत्रियाँ कहा जाता है। स्वरतंत्रियों के बीच के खुले भाग को स्वरयंत्रमुख या काकल कहते हैं। श्वास लेने की सामान्य अवस्था में या बोलते समय श्वास काकल से होकर ही आती-जाती है। स्वरतंत्रियों की विभिन्न स्थितियों के परिणामस्वरूप काकल के विभिन्न आकार ग्रहण करने से ही अघोष, घोष, मर्मर, काकलरंजन, फुसफुसाहट और काकल्य स्पर्श की उत्पत्ति होती है।

अभिकाकल के ऊपर स्थित ग्रसनी को संकीर्ण कर ग्रसनीय व्यंजन का उच्चारण किया जाता है। ग्रसनी के ऊपर एक खाली स्थान है, जहाँ से आगे दो विवर हैं मुखविवर और नासिका विवर। जिस प्रकार भोजन नलिका के साथ

श्वास नलिका की ओर झुकी हुई छोटी-सी जीभ अभिकाकल है, उसी प्रकार इस खाली स्थान के ऊपर मुख विवर और नासिका विवर के मार्गों के बीच झूलती हुई एक छोटी-सी जीभ के आकार का एक पिंड है, जिसे अलिजिह्वा कहते हैं। अभिकाकल की भाँति यह भी कोमलतालु के साथ नासिका विवर के मार्ग को पूर्णत: या आंशिक रूप से बंद कर देती है। बोलते समय इसके शिथिल रहने की स्थिति में नासिका विवर खुला रहता है और नासिक्य व्यंजनों का उच्चारण होता है, जबकि इसके आंशिक रूप से शिथिल रहने की स्थिति में अनुनासिक स्वरों का उच्चारण होता है। कोमलतालु के साथ इसके तने रहने पर नासिका विवर बंद हो जाता है और मौखिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त अलिजिह्वा अलिजिह्वीय व्यंजन के उच्चारण में भी प्रयुक्त होती है।

मुख विवर में ऊपर की ओर प्रश्वास के मार्ग में क्रमश: कोमलतालु, तालु, वर्त्स्यप्रदेश, दाँत और ओष्ठ है। मुखविवर के निचले भाग में जिह्वा है, जिसे ध्वनियों के वर्णन की सुविधा के लिए क्रमश: जिह्वामूल, जिह्वापश्च, जिह्वामध्य, जिह्वाग्र और जिह्वानोक कहा जाता है। जिह्वा प्रमुख करण के रूप में मुखविवर के ऊपरी भाग के विभिन्न स्थानों को स्पर्श कर या उनकी ओर विभिन्न प्रकार से अग्रसर होकर विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन करती है।

मुखविवर के निचले भाग में जिह्वा के बाद क्रमश: नीचे के दाँत और ओष्ठ हैं। ध्वनियों के उत्पादन में ऊपर के दाँतों का ही अधिक प्रयोग होता है। नीचे का ओष्ट और दाँत करण के रूप में कार्य करते हैं।

भौतिक स्वन विज्ञान

ध्वनियों के उच्चारणात्मक अभिलक्षणों की तरह भौतिक अभिलक्षण भी होते हैं, जो उन्हें एक दूसरे से भिन्न करते हैं। ये गुण हवा के भार में जो छोटे बदलाव होते हैं, उनसे संबंध रखते हैं। उन विभेदों को हमारे कान अनुभव करते हैं, जिनका हम ध्वनि स्पेक्ट्रोग्राफ और ऑसिलोग्राफ द्वारा अध्ययन करते हैं। ये जो बदलाव हैं, इनमें प्रमुख हैं, मूल आवृत्ति, आयाम और आवृत्ति बैंड। मूल आवृत्ति बैंड हवा के भार की आवृत्तियों के दोहराव होते हैं। यह हर व्यक्ति का अपना होता है। इस प्रकार पुरुष, स्त्री और उनमें वयस्क और अवयस्क के भी प्रशस्त विस्तार होते हैं। वयस्क पुरुष में ध्वनियों की मूल आवृत्ति 50-155 आवृत्ति प्रति सेकंड होती है जिन्हें 'हर्त्ज' (Hz) कहते हैं। महिलाओं में ज्यादातर 765 -255 (Hz) होते हैं और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में

400–600 (Hz) पाए जाते हैं। शास्त्रीय संगीत में विभिन्न रागों को अलग-अलग मूल आवृत्तियों में गाया जाता है। गायक इन्हें अपनी मूल आवृत्तियों के अनुसार प्रस्तुत करते हैं।

मूल आवृत्ति के अलावा हवा के भार में अधिकता और कमी से भी ध्वनियाँ अलग होती हैं, जिन्हें वायुकण के विश्राम बिंदु से अधिकतम दूरी के आधार पर मापा जाता है। इस दूरी के विस्तार को आयाम कहते हैं, जिसे डेसिबल कइ में मापा जाता है।

अधिस्वरक या अनुनादी आवृत्तियाँ ध्वनियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। ये अधिस्वरक में थ्व की गुणज होती है। बहुत सारे अधिस्वरकों में शुरू के 3–4 अधिस्वरक ध्वनियों को भिन्न करने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। ध्वनियों के उच्चारण में ये 3–4 आवृत्तियाँ एक साथ ध्वनित होती हैं। विशेष रूप से स्वर के उच्चारण में। इन्हीं 3–4 अधिस्वरकों में अंतर के कारण हम स्वरों को अलग-अलग सुनते हैं। इन अनुनादी आवृत्तियों को आवृत्ति बैंड कहते हैं। प्रथम तीन आवृत्ति बैंड – फ1, फ2, फ3 निम्न तीन गुणों से एक-एक का संबंध रखते हैं–

फ1 – वाक्-पथ के खुलेपन से।

फ2 वाक्-पथ में अग्र-पश्च भेद से।

फ3 उच्च व ओठों की स्थिति से।

फ1 – स्वरों में जैसे इ, ई, उ, ऊ, में कम होता है जैसे पुरुष में 400 Hz और नीचे स्वर 'आ' में 700 Hz

फ2 – पश्च स्वरों (उ, ओ,) के उच्चारण में फ2 नीचे होता है जैसे 1100Hz और अग्र स्वरों में ऊँचा होता है जैसे 1400Hz

फ3 – ओष्ठो की स्थिति को बताता है। वर्तुलित स्वरों में फ3 नीचे होता है, अन्यथा ऊपर होता है ये तीनों आवृत्ति बैंडों में देखे जा सकते हैं। जैसे हिंदी के निम्न वाक्य के स्पेक्ट्रोग्राफ या औसिलोग्राफ में–

श्रवणात्मक स्वन विज्ञान

श्रवणात्मक स्वन विज्ञान शाखा का क्षेत्र, उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान और भौतिक स्वन विज्ञान की तुलना में अस्पष्ट और विकासशील है। फिर भी इस विद्या के महत्व का भाषा विज्ञान और स्वन विज्ञान में कम नहीं समझा जाना चाहिए। उदाहरणत: निम्न बातों पर ध्यान दें– किसी भी ध्वनि के उच्चारण में

विभिन्न व्यक्ति या एक ही व्यक्ति के मुख के अलग आकार हो सकते हैं, जैसे तालु से जबड़े की दूरी में थोड़ा बदलाव आ सकता है या होठों को ज्यादा कड़े या नर्म तरह से रखा जा सकता है। फिर भी मुख की इन विभिन्न स्थितियों में होने के बावजूद हम उन्हें पहचान लेते हैं जैसे– 'ई' या 'फ'। (आप इन ध्वनियों के उच्चारण में मुख के आकार में थोड़ी-थोड़ी भिन्नता लाकर इस बात को देख सकते हैं।)

भाषिक ध्वनियाँ परिवेश की कई अन्य ध्वनियों के साथ सुनाई देती हैं, लेकिन हम भाषा की ध्वनियों को अन्य ध्वनियों से अलग कर लेते हैं।

इन बातों पर ध्यान देने पर पता चलता है कि श्रवणात्मक स्वन विज्ञान भाषा की हमारी क्षमता को समझने के लिए कितना महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

वाक् का अध्ययन भाषा के अध्ययन का अभिन्न भाग है। स्वनिक इकाइयों और प्रक्रियायों के दो मुख्य प्रकार हैं- खंडात्मक और रागीय वाक् के अध्ययन के दो मुख्य स्तर हैं- स्वन विज्ञान और स्वनिमविज्ञान। स्वन विज्ञान के तीन मुख्य भाग हैं- उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान, भौतिक स्वन विज्ञान और श्रवणात्मक स्वन विज्ञान।

2

हिंदी की ध्वनि संरचना

ध्वनि के बिना शब्दों, पदों अथवा वाक्यों की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी भी भाषा में ध्वनियों के महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। ध्वनियों का समूहन शब्द, पद, वाक्य यहाँ तक कि भाषा है। प्राचीन भारतीय चिंतन परंपरा में भी ध्वनियों का अध्ययन शिक्षा और प्रातिशाख्य के अंतर्गत किया गया है, जबकि भाषा विज्ञान में ध्वनियों का अध्ययन ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

ध्वनि विज्ञान अथवा स्वन विज्ञान को ध्वनियों के उत्पादन, संवहन और ग्रहण के आधार पर तीन शाखाओं 1. औच्चारिकी ध्वनि विज्ञान 2. भौतिकी ध्वनि विज्ञान 3. श्रौतिकी में विभक्त किया गया है। औच्चारिकी ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि के उच्चारण से संबंधित अध्ययन किया जाता है। ध्वनियों का उच्चारण स्थान क्या है, किन-किन वाक् अवयवों का इसमें योग होता है, वायु किस रूप में ध्वनियों को उच्चरित करती है। अर्थात् ध्वनियों के उत्पादन से संबंधित अध्ययन इस शाखा में किया जाता है। भौतिकी ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि के उच्चरित होने के पश्चात ध्वनि वायु तरंगों के माध्यम से किस रूप में सभी के संपर्क में आती हैं। अर्थात् वक्ता और श्रोता के बीच कैसे ये ध्वनियाँ पहुँचती हैं। इसका अध्ययन किया जाता है। ध्वनियों के संवहन से संबंधित अध्ययन ही इस शाखा का आधार है।

श्रौतिकी ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनियाँ वायु तरंगों के माध्यम से हमारे कान तक पहुँचती हैं। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सुनने से संबंधित अध्ययन किया जाता है। ध्वनियाँ कैसे हमारे कान के माध्यम से अंदर प्रविष्ट होती हुई हमारे तंत्रिका कोशिका (न्यूरोन) के माध्यम से हमारे मस्तिष्क तक पहुँचती हैं और सुनने वाला कैसे मस्तिष्क में स्थित पदार्थों और भावों के बिंब के माध्यम से बोलने वाले के भावों को समझ लेता है। इन सबका अध्ययन ध्वनि विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत किया जाता है। अर्थात् ध्वनियों के ग्रहण से संबंधित अध्ययन ही श्रौतिकी ध्वनि विज्ञान के मूल में है।

प्रस्तुत आलेख 'ध्वनि संरचना' विषय का संबंध केवल औच्चारिकी ध्वनि विज्ञान से है। अत: इसके अंतर्गत ध्वनियों के उत्पादन से संबंधित चर्चा की गई है।

भाषा मूलत: उच्चरित होती है। उच्चरित भाषा में शब्दों का निर्माण ध्वनियों अर्थात् वाक् ध्वनियों से होता है। भाषा के द्वारा मानव अपने विचारों का आदान – प्रदान करता है। भाषा के अंतर्गत वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद, रूपिम तथा स्वनिम (ध्वनि) क्रमश: बड़ी से छोटी इकाई आती है। इनमें सबसे छोटी इकाई स्वनिम (ध्वनि) है। अर्थात् भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है। वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद तथा रूप अथवा रूपिम आदि सभी सार्थक हैं तथा सभी ध्वनियों के समूह से ही बनते हैं। ध्वनियाँ अपने आप में सार्थक नहीं होतीं, परंतु अर्थ भेदक अवश्य होती हैं। ध्वनियाँ मानव मुख से नि:सृत होती हैं। होंठ, जिह्वा, दाँत, तालू, वर्त्स, कंठ, स्वरतंत्री, फेफड़ा, नासिकाविवर का ध्वनियों के उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इनमें सबसे अधिक चलायमान जिह्वा होती है। ध्वनियों के उत्पादन में जो सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है वह है वायु। वायु का मुखविवर में उसके किसी स्थान पर अवरोध, स्पर्श, घर्षण, स्वरतंत्रियों के कंपन आदि के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है। वायु का दबाव कितना है, कम है अथवा अधिक इसके आधार पर व्यंजन ध्वनियों में प्राणत्व का निर्धारण किया जाता है। यदि वायु नासिका विवर से निकलती है तो इससे उच्चरित ध्वनियाँ नासिक्य ध्वनियाँ कहलाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा मानव मुख से नि:सृत ध्वनियों का समूहन होती है। भाषा के निर्माणक ध्वनियाँ ही होती हैं। ध्वनियों से शब्द अथवा पद बनते हैं। शब्दपद से पदबंध, पदबंध से उपवाक्य, उपवाक्य से वाक्य बनते हैं। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ध्वनि को

स्वन कहते हैं। जिस शास्त्र के अंतर्गत ध्वनि का अध्ययन किया जाता है, वह ध्वनि विज्ञान अर्थात् स्वन विज्ञान कहलाता है। इस इकाई के अंतर्गत जहाँ स्वरों का वर्गीकरण जिह्वा की ऊँचाई, जिह्वा की स्थिति तथा होठों की आकृति के आधार पर किया गया है, वहीं व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण उनके उच्चारण स्थान, उच्चारण प्रयत्न आदि के आधार पर किया गया है। अक्षर एवं संयुक्ताक्षर (क्ष, त्र, ज्ञ, श्र) पर भी इस लेख में विचार किया गया है।

हिंदी की ध्वनियाँ

कुछ वैयाकरणों ने ध्वनि व वर्ण में अभेद संबंध बताया है। उनके अनुसार वर्ण वह लघुतम भाषिक इकाई है जिसे और लघुतम खंडो में विभाजित नहीं किया जा सकता। जैसे - व्यंजन वर्ण, वर्णमाला में हलंत ही होते हैं अतः इनका विभाजन और खंडो में नहीं किया जा सकता। परंतु 'क' ध्वनि को क्. अ में विभाजित किया जा सकता है इसीलिए ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत खंडीय स्वनिम और खंडेतर स्वनिम की बात की गई है। अर्थात् खंडीय स्वनिम को स्वर तथा व्यंजन दो उपखंडो में विभाजित किया गया है। खंडेतर स्वनिम स्वनिक अथवा ध्वनि गुण (मात्र, बलाघात, सुर, अनुतान आदि) के रूप में ध्वनियों के साथ विद्यमान होते हैं।

हिंदी में परंपरागत वर्णमाला की व्यवस्था निम्नलिखित है-

स्वररू अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

अं अः

व्यंजनः क ख ग घ ङ.

च छ ज झ ञ (वर्गीय ध्वनियाँ)

ट ठ ड ढ ण स्पर्श

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व अंतस्थ

श ष स ह ऊष्म

क्ष त्र ज्ञ संयुक्ताक्षर

ऊपर दिए गए वर्णमाला के अंतर्गत स्वर वर्णों में ऋ, अं, अः को स्थान दिया गया था, परंतु वर्तमान में इन्हें स्वर के अंतर्गत नहीं रखा गया है। वरन् ऋ को 'रि' जैसा उच्चारण होने के कारण भाषा वैज्ञानिकों ने स्वर के अंतर्गत नहीं

रखा। जहाँ हिंदी में 'ऋ' का उच्चारण 'रि' जैसा होता है वहीं मराठी तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं में 'रू' जैसा होता है कुछ क्षेत्रों में विशेषकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश और उससे सटे प्रदेशों में 'ऋ' का उच्चारण 'र' जैसा भी करते हैं। हिंदी में ऋतु, ऋषि, ऋण आदि का उच्चारण रितु, रिशि, रिण तथा दृष्टि, मृत्यु,कृपा आदि का उच्चारण द्रिश्टि, म्रित्यु तथा क्रिपा होता है। परंपरागत व्याकरण में स्वरों का वर्गीकरण दीर्घता के आधार पर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत रखा गया है। परंतु हिंदी में केवल ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर ही विद्यमान हैं। भट्टोजि दीक्षित ने स्वरों के तीन भेद माना है- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। उदात्त का अर्थ है ऊपर उठा हुआ (आरोही) अनुदात्त का अर्थ है अवरोही तथा स्वरित का अर्थ सम होता है। अं को वैयाकरणों ने अनुनासिक ध्वनि माना है 'अं' अर्थात् अँ इसे कुछ आधुनिक भाषा वैज्ञानिक ध्वनि गुण के रूप में मानते हैं। अत: 'अं' स्वर के अंतर्गत नहीं आता है। हाँ, इसके अंर्तगत स्वरात्मक गुण अवश्य है। अः अर्थात् विसर्ग का अघोष 'ह' के रूप में' उच्चारण होता है। अत: विसर्ग भी स्वर के अंतर्गत नहीं आता।

स्पर्श व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण उनके वर्गीय ध्वनियों के रूप में किया गया है। क वर्ग (क ख ग घ ङ), च वर्ग (च छ ज झ अ), ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण), त वर्ग (त थ द ध न) तथा प वर्ग (प फ ब भ म) इन पच्चीस व्यंजन ध्वनियों को स्पर्श कहा गया है।

य, र, ल, व को अंतस्थ, श, ष, स, ह को ऊष्म तथा क्ष, त्र, ज्ञ को संयुक्ताक्षर कहा गया है। इसके अतिरिक्त ड़, ढ़ ध्वनियाँ परंपरागत वर्णमाला में नहीं थीं। आज इन्हें वर्णमाला में शामिल कर लिया गया है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जिन ध्वनियों को वर्णमाला में स्थान दिया गया है, वे इस प्रकार हैं -

नोट: भाषा विज्ञान की दृष्टि से ऋ का उच्चारण स्वर जैसा नहीं है, बल्कि व्यंजन और स्वर का मिला हुआ रूप है।'

1. **स्वर ध्वनि**–' स्वतो राजन्ते इति स्वरा:' (महाभाष्य - पतंजलि) जो स्वत: उच्चरित हो वह स्वर है अर्थात् जिसका उच्चारण किसी अन्य ध्वनियों की सहायता के बिना हो, वह स्वर है। विश्व की कुछ भाषाएँ (दक्षिण अफ्रीका की बान्तू आदि भाषाएँ) ऐसी हैं, जिनमें स्वर के बिना ही व्यंजन उच्चरित होते हैं, अत: उपर्युक्त परिभाषा हिंदी अथवा संस्कृत भाषा के लिए उपयुक्त हो सकती है, परंतु विश्व की सभी भाषाओं के लिए नहीं। स्वर की आधुनिक भाषा

वैज्ञानिक परिभाषा इस प्रकार है '' जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुखविवर में कहीं भी वायु का कोई अवरोध न हो, उसे स्वर कहते हैं।'' स्वर मात्र के प्रतीक हैं, वे ह्रस्व होते हैं अथवा दीर्घ। संस्कृत में मात्र के आधार पर स्वरों के तीन प्रकार ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत माने गए हैं। किसी स्वर के उच्चारण में लगने वाला समय, मात्र कहलाती है। पाणिनि ने स्वर की तीन मात्राएँ मानी हैं - ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

''एक मात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो सेयो व्यंजन चार्धमात्रकम्''।

ह्रस्व– जिन स्वरों के उच्चारण में एक मात्र का समय लगता है, उसे ह्रस्व स्वर कहते हैं, जैसे - अ, इ, उ।

दीर्घ- जिन स्वरों के उच्चारण में दो मात्राओं का समय लगता है, उसे दीर्घ स्वर कहते हैं, जैसे- आ, ई,ऊ, ए,ओ,औ। इसे द्विमात्रिक भी कहा गया है।

प्लुत– जिन स्वरों के उच्चारण में दो से अधिक मात्रा का समय लगता है, उसे प्लुत कहते हैं। 'ॐ', में 'ओ' प्लुत है। किसी भी दूर खड़े व्यक्ति को पुकारने पर प्लुत स्वर का उच्चारण होता है। जैसे - अशो3क, रा3म आदि। इसे त्रिमात्रिक भी कहा गया है।

2. स्वरों का वर्गीकरण

हिंदी में स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन आधारों पर किया गया है–

1. जिह्वा की ऊँचाई।
2. जिह्वा की स्थिति।
3. होठों की आकृति।

1. जिह्वा की ऊँचाई - जिह्वा की ऊँचाई के आधार पर स्वरों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है।

संवृत, अर्ध संवृत, अर्ध विवृत और विवृत।

• **संवृत** - जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का जितना अधिक भाग ऊपर उठता है, उससे वायु उतना ही संकुचित होकर बिना किसी रूकावट के बाहर निकलती है, इससे उच्चरित होनेवाले स्वर संवृत कहलाते हैं। ई, इ, ऊ, उ संवृत स्वर हैं।

• **अर्धसंवृत** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का भाग कम ऊपर उठता है और वायु मुखविवर में कम संकुचित होती है। इससे उच्चरित स्वर अर्ध संवृत कहलाते हैं। ए और ओ अर्ध संवृत स्वर हैं।

• **अर्धविवृत** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा अर्धसंवृत से कम ऊपर उठती है और मुखविवर में वायु मार्ग खुला रहता है। इससे उच्चरित स्वर अर्ध विवृत स्वर कहे जाते हैं। अ, ऐ और औ अर्धविवृत स्वर हैं।

• **विवृत** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा मध्य में स्थित होती है और मुखविवर पूरा खुला रहता है, ऐसे उच्चरित स्वर को विवृत कहते हैं। 'आ' विवृत स्वर है।

2. **जिह्वा की स्थिति** – किसी स्वर के उच्चारण में जिह्वा की स्थिति के आधार पर स्वरों के तीन भेद किए जाते हैं –

• **अग्रस्वर** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग सक्रिय होता है, ऐसे उच्चरित स्वर को अग्रस्वर कहते हैं। हिंदी में इ, ई, ए, ऐ, अग्रस्वर हैं।

• **मध्य स्वर** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का मध्य भाग सक्रिय होता है, ऐसे उच्चरित स्वर को मध्य स्वर कहते हैं। हिंदी में 'अ' मध्य स्वर है।

• **पश्चस्वर** – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का पश्च भाग सक्रिय होता है, ऐसे उच्चरित स्वर को पश्च स्वर कहते हैं। हिंदी में ऊ,उ,ओ,औ, एवं आ पश्च स्वर हैं।

3. **होंठो की आकृति** – किसी स्वर के उच्चारण में होठों की आकृति के आधार पर स्वरों को दो वर्गों में रख सकते हैं – 1. गोलीय 2. अगोलीय

• **गोलीय** – जिन स्वरों के उच्चारण में होंठ की स्थिति कुछ गोलाकार होती है, ऐसे उच्चरित स्वर को गोलीय कहते हैं। ऊ, उ, ओ, औ, ऑ गोलीय स्वर हैं। (अंग्रेजी से आए हुए व् स्वर के लिए ऑ का उच्चारण होता है जैसे – डॉक्टर, नॉर्मल आदि।)

• **अगोलीय** – जिन स्वरों के उच्चारण में होंठ की स्थिति गोलाकार नहीं होती है, ऐसे उच्चरित स्वर को अगोलीय कहते हैं। अ, आ, इ, ई, ए और ऐ अगोलीय स्वर हैं।

• **नोट** – कुछ वैयाकरण एक और वर्ग करते हैं 'उदासीन'। उदासीन स्वर के अंतर्गत 'अ' को रखते हैं।'

हिंदी के दस स्वरों का स्वानिक रूप चार्ट के माध्यम से इस प्रकार दिखाया जा सकता है –

3. व्यंजन ध्वनियाँ

परंपरागत व्याकरण में जिन ध्वनियों का उच्चारण स्वत: होता है और उसके उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि की आवश्यकता नहीं होती, उसे स्वर तथा जिन ध्वनियों के उच्चारण के लिए स्वर की सहायता लेते हैं, उन ध्वनियों को व्यंजन कहा गया है।

''स्वयं राजन्ते इति स्वरा: अन्वग भवति व्यंजनमिति।" (महाभाष्य-पतंजलि।)

अर्थात् स्वर स्वयं शोभा पाते हैं, जबकि व्यंजन स्वरों का अनुकरण करते हैं।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से व्यंजन की परिभाषा इस प्रकार है-

जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुखविवर में कहीं न कहीं वायु का अवरोध हो, उसे व्यंजन ध्वनि कहते हैं।

व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

परंपरागत वैयाकरणों की दृष्टि से व्यंजन ध्वनियों को स्पर्श, अंतस्थ एवं ऊष्म वर्गों में रखा गया है। स्पर्श के अंतर्गत सभी वर्गीय ध्वनियों (क वर्ग से प वर्ग तक कुल पच्चीस ध्वनियाँ) को रखा गया है, अंतस्थ के अंतर्गत य र ल व को तथा ऊष्म ध्वनियों के अंतर्गत श ष स ह को रखा गया है। यह वर्गीकरण आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर किया गया है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण उच्चारण स्थान एवं उच्चारण प्रयत्न के आधार पर किया गया है।

उच्चारण स्थान

किन्हीं ध्वनियों का उच्चारण मुखविवर के किस स्थान से हो रहा है। इसके आधार पर द्वयोष्ठ्य, दंत्योष्ठ्य, दंत्य, वर्त्स्य, मूर्धन्य, तालव्य, कण्ठ्य और काकल्य आदि ध्वनियाँ निर्धारित की गई हैं। इन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में वायु का दबाव कम होता है अथवा अधिक। इसके आधार पर व्यंजन ध्वनियाँ अल्पप्राण होती हैं अथवा महाप्राण। इन्हें उच्चारण स्थान के आधार पर इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है –

द्वयोष्ठ्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण दोनों होठों के स्पर्श से होता है। उन ध्वनियों को द्वयोष्ठ्य ध्वनि कहते हैं। हिंदी में प, फ, ब, भ, म,व द्वयोष्ठ्य व्यंजन हैं।

दंत्योष्ठ्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण ऊपरी दाँत एवं निचले होंठ के स्पर्श से होता है। ऐसे व्यंजन ध्वनियों को दंत्योष्ठ्य ध्वनि कहते हैं। हिंदी में दंत्योष्ठ्य व्यंजन नहीं पाये जाते। इस प्रकार की व्यंजन ध्वनियाँ फारसी में 'फ' अंग्रेजी में एि ट के रूप में विद्यमान हैं। हिंदी की 'व' ध्वनि को कुछ ध्वनि विज्ञानी दंत्योष्ठ्य मानते हैं, परंतु 'व' द्वयोष्ठ्य व्यंजन है।

वर्त्स्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण वर्त्स अर्थात् मसूड़ों से किया जाता है, उन्हें वर्त्स्य व्यंजन कहा जाता है। इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा वर्त्स स्थान अथवा मसूड़ों को स्पर्श करती है। हिंदी में जो पहले दंत्य ध्वनियाँ थीं वे आज वर्त्स्य ध्वनियाँ हैं।

दंत्य – जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा दांत को स्पर्श करती है। ऐसे उच्चरित व्यंजन दंत्य कहलाते हैं। जैसे– त, थ,द, ध, न,स। दंत्य ध्वनियाँ दंत व वत्स दोनों के बीच उच्चरित होती हैं।

मूर्धन्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण मूर्धा से होता है, उन्हें मूर्धन्य कहा जाता है। इनके उच्चारण में जीभ को कठोर तालु के पिछले भाग में स्थित मूर्धा का स्पर्श करना पड़ता है। ट, ठ, ड, ढ ण, ड़, एवं ढ़ आदि मूर्धन्य व्यंजन हैं।

तालव्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण तालु स्थान से होता है, उन्हें तालव्य कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का अगला भाग तालु को छूता है, जैसे– च, छ, ज, झ, ञ, य तथा श।

कंठ्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण कंठ से होता है, उन्हें कंठ्य व्यंजन कहते हैं। इन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु को छूता है। इसीलिए कुछ भाषा वैज्ञानिक कंठ्य व्यंजन को कोमल तालव्य व्यंजन मानते हैं। क, ख, ग, घ, ङ कंठ्य ध्वनियाँ हैं।

काकल्य – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण काकल स्थान से किया जाता है। उन ध्वनियों को काकल्य कहा जाता है। इस ध्वनि के उच्चारण के समय स्वरतंत्री में कंपन होता है। हिंदी में 'ह' ध्वनि काकल्य व्यंजन है।

उच्चारण प्रयत्न

जिन व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण उनके उच्चारण अवयव के द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न के आधार पर किया जाता है, उन्हें उच्चारण प्रयत्न कहा जाता है। इसके अंतर्गत स्वरतंत्रियों में कंपन होने अथवा न होने के आधार पर अघोष और सघोष ध्वनियों का निर्धारण होता है। उच्चारण प्रयत्न के आधार पर व्यंजन ध्वनियों को निम्नलिखित वर्गों में रखा गया है –

स्पर्श – व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा उच्चारण स्थान को स्पर्श करती है। जिह्वा के उच्चारण स्थान को स्पर्श करते समय वायु मुखविवर में अवरूद्ध होकर झटके से बाहर निकलती है। ऐसे प्रयत्न से उत्पन्न व्यंजन ध्वनि को स्पर्श ध्वनि कहते हैं। इनके अंतर्गत कंठ्य, मूर्धन्य, दंत्य, वर्त्स्य और ओष्ठ्य ध्वनियाँ सम्मिलित हैं। क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ स्पर्श ध्वनियाँ हैं।

स्पर्श संघर्षी – जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा उच्चारण स्थान को स्पर्श करती है तथा मुखविवर से वायु घर्षण के साथ निकलती है। ऐसे उच्चरित ध्वनियों को स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहते हैं, जैसे – च छ ज झ।

संघर्षी – जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण करते समय मुखविवर में वायु सँकरे मार्ग से निकलती है, इससे मुखविवर में घर्षण होता है। ऐसी ध्वनियाँ संघर्षी कहलाती हैं। जैसे – श, ष, स, ह।

पार्श्विक– जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा दंत अथवा वर्त्स स्थान को छूती है, उस समय वायु जिह्वा के अगल-बगल से बाहर निकलती है, उन ध्वनियों को पार्श्विक कहते हैं। हिंदी में 'ल' पार्श्विक ध्वनि है।

लुंठित– जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा एक या अधिक बार वर्त्स स्थान को स्पर्श करती है, उन्हें लुंठित ध्वनि कहते हैं। लुंठित को लोड़ित भी कहा गया है। हिंदी में 'र' लुंठित व्यंजन है।

उत्क्षिप्त– जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा मूर्धा स्थान को शीघ्रता से स्पर्श करती है। उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं। हिंदी में 'ड़' और 'ढ़' उत्क्षिप्त व्यंजन हैं।

नासिक्य– जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुखविवर में अवरूद्ध होकर नासिका विवर एवं मुखविवर दोनों मार्ग से एक साथ निकलती है। ऐसी उच्चरित ध्वनियाँ नासिक्य कहलाती हैं। ङ, ञ, ण, न, म नासिक्य ध्वनियाँ हैं। म्ह, न्ह, ङ्ह

को महाप्राण नासिक्य कहा गया है। हिंदी में इन महाप्राण नासिक्य ध्वनियों का शब्द के आरंभ में प्रयोग नहीं होता। शब्द के मध्य और अंत में संहार, कुम्हार, कान्हा आदि शब्दों में इनका प्रयोग होता है।

अर्धस्वर- जिन ध्वनियों के उच्चारण के समय जिह्वा एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सरकती है और वायु मुखविवर को किंचित सँकरा बना देती है, ऐसी ध्वनि को अर्धस्वर कहते हैं। 'य' और 'व' अर्धस्वर हैं।

घोषत्व- व्यंजन ध्वनियों में घोषत्व का आधार स्वरतंत्रियां हैं। जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन हो तो वे ध्वनियाँ सघोष कहलाती हैं और यदि स्वर तंत्रियों में कंपन न हो अथवा अत्यल्प कंपन हो तो वे ध्वनियाँ अघोष कहलाती हैं।

जैसे -

अघोष - क ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स और विसर्ग ह:

सघोष - ग घ ङ, ज झ`, ड ढ ण ड़ ढ़, द,ध, न, ब भ म, य, र, ल, व, ह।

(सभी स्वरों को जी.बी. धल आदि जैसे भाषाविद् सघोष ध्वनि मानते हैं।)

प्राणत्व - प्राण का अर्थ होता है वायु। ध्वनियों के उच्चारण में वायु का कम प्रयोग किया जाता है अथवा अधिक, इनके आधार पर ध्वनियों का प्राणत्व निर्धारित होता है, ध्वनियाँ या तो अल्पप्राण होती हैं या महाप्राण।

अल्पप्राण - जिन ध्वनियों के उच्चारण में प्राण अथवा वायु का कम अथवा अत्यल्प प्रयोग किया जाता है, उन्हें अल्पप्राण ध्वनि कहते हैं। व्यंजन ध्वनियों के वर्गीय ध्वनियों में प्रथम, तृतीय और पंचम अल्पप्राण ध्वनियाँ हैं। जैसे- क,ग,ङ, च,ज,, ट,ड,ण, त,द,न,प,ब,म, य,र,ल,व अल्पप्राण व्यंजन हैं।

महाप्राण - जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु का अधिक (अर्थात् अल्पप्राण की अपेक्षा अधिक प्रयोग) किया जाता है, उन्हें महाप्राण कहते हैं। हिंदी में प्रत्येक वर्गीय ध्वनियों के दूसरे और चौथे व्यंजन अर्थात् ख,घ, छ,झ, ठ, ढ, थ, ध तथा फ, भ महाप्राण ध्वनियाँ है। इनके अतिरिक्त ऊष्म ध्वनियाँ श, ष, स और ह महाप्राण ध्वनियाँ हैं।

हिंदी में अल्पप्राण व्यंजन के साथ 'ह' जोड़ने पर महाप्राण ध्वनियाँ बनती हैं। संस्कृत में व्यंजन ध्वनियों को हल् कहा गया है। अत: व्यंजन ध्वनियाँ वर्णमाला में हलंत् होती हैं, उनमें 'ह' जोड़ने पर महाप्राण बनती हैं। जैसे -

क्.ह = ख, ग्. ह = घ, च्. ह = छ
ज्. ह = झ, ट्. ह = ठ, ड्. ह = ढ
त्. ह = थ, द्. ह = ध, प्. ह = फ
ब्. ह = भ न्. ह = न्ह, म्. ह = म्ह।

व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण का चार्ट –

4. **अनुस्वार (ं) एवं अनुनासिकता (ँ)**

अनुस्वार और अनुनासिकता दोनों ही नासिक्य ध्वनियाँ हैं। परंतु दोनों ध्वनियों में अंतर है। जहाँ अनुस्वार पंचमाक्षर है अर्थात् वर्गीय ध्वनियों का पंचम वर्ण ङ्, ञ्, ण, न, म है, वहीं अनुनासिक ध्वनि स्वतंत्र ध्वनि नहीं है, बल्कि वह किसी न किसी स्वर के साथ ही प्रयुक्त होती है। अनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण के समय मुखविवर में कोई अवरोध नहीं होता केवल इसके उच्चारण के समय वायु नासिका व मुखविवर दोनों मार्गों से निकलती है, अत: अनुनासिक में स्वनिमिक गुण होता है। जबकि अनुस्वार स्वतंत्र व्यंजन ध्वनि है। अनुस्वार का चिह्न (ं) है तथा अनुनासिक का (ँ) है। इनके भेद से अर्थ भेद संभव है। जैसे– हंस – हँस, अंगना – अँगना आदि में जहाँ 'हंस' पक्षी है, वहीं हँस का अर्थ हँसना धातु से है, अंगना का अर्थ जहाँ सुंदर स्त्री है, वहीं अँगना का अर्थ आँगन है।

5. हल्

हिंदी में हल् चिन्हों का प्रयोग अब धीरे–धीरे कम हो रहा है, क्योंकि हल् चिन्हों का प्रयोग कहाँ करें और कहाँ न करें? क्या केवल तत्सम शब्दों में ही हल् चिन्हों का प्रयोग किया जाना चाहिए? यदि हाँ तो हिंदी में जितने भी अकारांत शब्द होते हैं, वे सभी व्यंजनांत होते हैं फिर उनमें भी हल् लगाया जाना चाहिए? हल् को लेकर ऐसे प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं। इस तरह से हल् चिन्हों का प्रयोग प्रत्येक शब्दों में प्राय: करना पड़ेगा। भाषा को सरल और सुस्पष्ट होना चाहिए न कि दु:ह और अस्पष्ट। 'काम' शब्द हिंदी में व्यंजनांत है, लिखा जाना चाहिए 'काम्' परंतु लिखा जाता है 'काम'। इसी प्रकार कलम, मार, चाक, काल, दिन, रात, हाथ, न्यास आदि सभी शब्द व्यंजनांत हैं।

अत: हिंदी में अब हल् चिन्हों का प्रयोग न के बराबर किया जा रहा है। हाँ, जहाँ शब्द अर्थ भेदक होंगे वहाँ संदर्भ से अर्थ लिया जा सकता है।

6. संध्यक्षर

जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सरकती है, ऐसे उच्चरित स्वर ध्वनियाँ संध्यक्षर कहलाती हैं, जैसे - अइ - अउ आदि। भइआ, गइआ, मइआ, कउआ आदि में इआ और उआ संध्यक्षर हैं। संयुक्त स्वर (ऐ, औ) और संध्यक्षर (अइ - अउ) में मूलभूत जो अंतर है वह यह कि संयुक्त स्वर एक ही श्वासाघात में उच्चरित ध्वनि है और संध्यक्षर एक से अधिक श्वासाघात में उच्चरित ध्वनि समूह।

7. अक्षर

अक्षर एक ध्वनि है अथवा ध्वनियों का समूह, यह एक ही श्वासाघात में उच्चरित होते हैं अथवा एक से अधिक श्वासाघात में, अक्षर ही वर्ण है अथवा वर्णों का समूह आदि पर विचार करने से पूर्व कुछ भाषा शास्त्रियों के अक्षर से संबंधित मत द्रष्टव्य हैं -

उदय नारायण तिवारी - अक्षर शब्द के अंतर्गत उन ध्वनि समूहों की छोटी से छोटी इकाई को कहते हैं, जिनका उच्चारण एक साथ हो तथा जिन्हें विभक्त करके बोलने पर उसका कोई अर्थ न प्रकट हो। - भाषाशास्त्र की रूपरेखा, पृष्ठ 126

बाबूराम सक्सेना - संयुक्त ध्वनियों के छोटे समूह को अक्षर कहते हैं और अक्षर की ध्वनियों का एक साथ (अति सन्निकटता) में उच्चारण होता है। प्राचीन भाषाविज्ञों का विचार था कि स्वर ही अक्षर बनाने में समर्थ होता है और जितने व्यंजन उसके साथ लिपटे हों उनको साथ लेकर वह अक्षर कहलाता है। - सामान्य भाषा विज्ञान, पंचम संस्करण, पृष्ठ 72

भोलानाथ तिवारी - एक या अधिक ध्वनियों (या वर्णों) की उच्चारण की दृष्टि से अव्यवहित इकाई, जिसका उच्चारण एक झटके में किया जा सके, अक्षर है। - भाषा विज्ञान, 1961, पृष्ठ 354

उपर्युक्त मतों के आधार पर अक्षर की परिभाषा इस प्रकार होगी - '' एक ही श्वासाघात में उच्चरित ध्वनि अथवा ध्वनि समूह को अक्षर कहते हैं''। यदि एक ही श्वासाघात में कई ध्वनियाँ एक साथ उच्चरित होती हैं तो उनमें एक मुखर ध्वनि होती है। वाक् ध्वनियों में सबसे मुखर ध्वनि स्वर होती है। अतः जिन ध्वनियों अथवा ध्वनि समूह में जितनी संख्या मुखर ध्वनि अर्थात् स्वर की

होगी उतने ही अक्षर होंगे। हिंदी में जिन शब्दों में जितने स्वर होते हैं, उतने अक्षर होते हैं। अक्षर का विभाजन प्रत्येक श्वासाघात के आधार पर होता है। प्रत्येक स्वर अक्षर होता है, अतः स्वर आक्षरिक कहलाते हैं।

जैसे - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि एक-एक अक्षर हैं।

एक व्यंजन और एक स्वर का योग अक्षर हो सकता है। जैसे - गा (ग् . आ)

का (क्. आ), रा (र् आ) आदि।

दो व्यंजन और एक स्वर का योग अक्षर हो सकता है जैसे -

क्ष (क्. ष्. अ), त्र (त्.. र् अ), ज्ञ (ज् ञ्.अ) काम (क्. आ. म्), नाम (न्. आ. म्) आदि।

तीन व्यंजन और एक स्वर का योग अक्षर हो सकता है। जैसे -

कृष (क्.. र् इ. ष्), क्रम (क्.. र् अ. म्) आदि।

चार व्यंजन और एक स्वर का योग अक्षर हो सकता है -

स्वप्न (स्. व्. अ. प्. न्), क्लिष्ट (क्. ल्. इ. ष्. ट्) आदि।

पाँच व्यंजन और एक स्वर का योग अक्षर हो सकता है जैसे -

स्वास्थ्य (स्. व्. आ. स्. थ्. य्)

इस प्रकार सभी स्वर आक्षरिक होते हैं। एक शब्द एक अक्षर का हो सकता है और कई अक्षरों का भी। जैसे - 'स्वप्न' एक शब्द है और अक्षर भी परंतु 'विद्या' दो अक्षरों वाला एक शब्द है।

अक्षर विभाजन

शब्दों के सही उच्चारण के लिए अक्षरों का विभाजन कहाँ से करें यह बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। शब्द या तो एकाक्षरी होते हैं या अनेकाक्षरी। एकाक्षरी शब्दों के उच्चारण में जो मुखर ध्वनि है, उसी पर बलाघात भी होता है। परंतु जहाँ अनेकाक्षरी शब्द हैं, उच्चारण में विभाजन ठीक होना चाहिए।

उदाहरण के लिए 'वक्ता' शब्द का अक्षर विभाजन होगा 'वक्. ता' न कि 'व-क्ता'। इसी प्रकार 'पक्का' शब्द में अक्षर विभाजन होगा पक्. का न कि पक्क्. आ। अक्षर विभाजन से संबंधित कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

अद्धा = अद्. धा, व्याघ्र = व्याग्. घ्र

विद्यालय = विद् द्या. लय, विद्या = विद्. द्या

पत्ता = पत्. ता, कंगन = कङ्. गन्

अंदर = अन्. दर

(जहाँ शांत एक अक्षर है वहीं शांति दो अक्षरों वाला एक शब्द)

सिंगारदान = सिंङ्गार्दान्, विद्वान = विद्. द्वान्

पश्चिम = पश्. चिम्, उद्योग = उद्. द्योग्

अत्याचार = अत्त्याचार्चा अद्वितीय = अद्. द्वि. तीय

विद्यार्थी = विद्. द्यार्थी, शत्रु = शत्. त्रु

अन्यत्र = अन्. न्यर्त् विख्यात = विक्.ख्यात्

अम्लान = अम्.म्लान्, अध्यापक = अद्. ध्या. पक्, अभ्यास = अभ्यास् आदि।

8. ध्वनि गुण

ध्वनियों के साथ कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जिन्हें ध्वनियों से अलग नहीं किया जा सकता परंतु वे अपने आप में ध्वनि नहीं होते। इन्हें ध्वनि गुण कहा जाता है। भाषा विज्ञान में इन्हें खंडेतर ध्वनि कहते हैं। ये ध्वनि गुण मात्रा, बलाघात, सुर, अनुनासिकता और संगम आदि के रूप में ध्वनियों में विद्यमान होते हैं।

मात्रा

किसी ध्वनि के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे हम उस ध्वनि की मात्रा कहते हैं। इसी के आधार पर स्वरों को ह्रस्व एवं दीर्घ कहा जाता है। यदि ये मात्राएँ अर्थभेदक होंगी तो वे ध्वनि स्वनिमिक होती हैं।

हिंदी में स्वरों के मात्र-भेद के उदाहरण इस प्रकार हैं -

कल - काल जल - जाल तुल -तूल आदि।

मल - माल मन - मान।

मिल - मील दिन - दीन।

हिंदी में व्यंजन ध्वनियों में भी काल मात्रा होती है। इसके कारण अर्थभेद भी होता है, परंतु यह काल मात्रा लेखन में व्यंजन के द्वित्व के रूप में प्रयोग करने की परंपरा है जैसे - पका - पक्का, सजा - सज्जा,पता - पत्ता आदि।

बलाघात

बोलते समय कभी - कभी किसी ध्वनि पर विशेष जोर दिया जाता है। इसे ही सामान्यतः बलाघात कहा जाता है।

''किसी विशेष ध्वनि पर वाक्य अथवा पद की अन्य ध्वनियों की अपेक्षा उच्चारण में अधिक प्राणशक्ति लगाना बलाघात कहलाता है। 'डॉ. बाबू राम सक्सेना – सामान्य भाषा विज्ञान'

''बलाघात का अर्थ है शक्ति अथवा वेग की वह मात्रा जिससे कोई ध्वनि या अक्षर उच्चरित होता है। इस शक्ति के लिए फुफ्फुस को एक प्रबल धक्का देना पड़ता है परिणामत: एक अधिक बलवाला नि:श्वास फेंकना पड़ता है, जिससे प्राय: ध्वनि में उच्चता की प्रतीति होती है। डॉ. रामदेव त्रिपाठी – भाषा विज्ञान की भारतीय परंपरा और पाणिनि।

कम अथवा अधिक आघात का प्रयोग कुछ भाषाओं में अर्थ परिवर्तन का कारण भी होता है। जैसे- अंग्रेजी के Present शब्द में यदि प्रथम अक्षर पर अधिक बल दिया जाए तो 'Present उपस्थिति का अर्थ होता है और यदि दूसरे अक्षर पर बल दिया जाए तो Persent उपहार देने का अर्थ होता है।

सुर

ध्वनि को उत्पन्न करने वाली कंपन की आवृत्ति ही सुर का प्रमुख आधार होती है। इसी आधार पर इसे उच्च या निम्न कहा जा सकता है। सुर का प्रमुख आधार स्वरतंत्री होती है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वरतंत्री एक जैसी नहीं होती। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति का सुर एक जैसा नहीं होता। सुर के तीन भेद बताए गए हैं – उच्च, निम्न और सम।

उच्च में सुर नीचे से ऊपर जाता है, निम्न में ऊपर से नीचे आता है और सम में बराबर रहता है। इसे आधुनिक भाषा विज्ञान में उच्च सुर, निम्न सुर और सम सुर कहा गया है।

अनुनासिकता – अनुनासिक खंडेतर ध्वनि है। इसे स्वरगुण के रूप में जाना जाता है। अनुनासिकता अर्थभेदक इकाई है। जैसे – साँस–सास, सँवार–सवार, माँग–मांग आदि।

संगम अथवा संहिता – जिन भाषिक ध्वनियों का प्रयोग वाक्य में होता है, उन ध्वनियों की सीमाओं का स्पष्ट होना अनिवार्य होता है। किन्हीं दो भाषिक इकाइयों (ध्वनियों) के बीच कुछ क्षण के लिए रूका जाता है तो उस अनुच्चरित समय का सीमांकन होता है। इस प्रकार के समय सीमांकन को संहिता या संगम कहा जाता है। यदि उपयुक्त संगम या संहिता न हो तो अभिप्सित अर्थ से परे अर्थ मिलने की संभावना बढ़ जाती है।

जैसे - खा.ली = खाली। पी. ली = पीली।

उग. आया है = उगाया है। बंद. रखा गया = बंदर. खा गया।

दी. या नहीं = दीया. नहीं। रोको मत. जाने दो = रोको. मत जाने दो।

भारतीय प्राचीन शास्त्रों में अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि शुद्ध उच्चारण का कितना महत्व था। यदि 'इंद्रशत्रु' में प्रथम अक्षर पर उदात्त हो तो बहुव्रीहि समास होगा और अर्थ होगा 'इंद्र है शत्रु जिसका' और यदि अंतिम अक्षर पर उदात्त होगा तो तत्पुरूष समास होगा, अर्थ होगा इंद्र का शत्रु। इस प्रकार सुर भेद से अर्थ भेद हो जाता था।

एक - एक अक्षर के शुद्ध उच्चारण का महत्व प्राचीन भारतीय परंपरा में भी था। पाणिनीय 'शिक्षा' (ध्वनि विज्ञान) में एक स्थान पर आया है।

''अवाक्षरम् अनायुष्यम् विस्वरम् व्याधि पीड़ितम्।
अक्षता शास्त्ररूपेण वज्रम पतति मस्तके॥''

जब किसी मंत्र में कोई अक्षर कम हो तो जीवनक्षय हो सकता है और जब अक्षर उचित सुर के साथ न पढ़ा जाए तो इससे पढ़ने वाला व्याधि से पीड़ित हो सकता है और कोई अक्षर अशुद्ध ही उच्चरित किया जाए तो वह उच्चरित रूप दूसरे के सिर पर वज्र की तरह पड़ता है।

भाषा विज्ञान की अन्य शाखाएँ जैसे- रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान वस्तुतः ध्वनि पर ही आधारित हैं। ध्वनियों से रूप बनते हैं, रूप से पद तथा वाक्य। ऐसे ही अर्थ का आधार पद अथवा वाक्य है। जब तक ध्वनियों का सम्यक् ज्ञान न हो तब तक रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान एवं अर्थ विज्ञान का सम्यक् ज्ञान कठिन है।

ध्वनियों का ज्ञान लिपि चिह्नों के निर्माण के लिए भी आवश्यक है। संसार में आज भी ऐसी भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। उनकी लिपियों के निर्माण के लिए ध्वनियों का ज्ञान अति आवश्यक है। आदर्श लिपि वही माना जाता है, जिसमें एक ध्वनि के लिए एक लिपि संकेत की व्यवस्था दी गई हो। देवनागरी लिपि एक आदर्श लिपि कही जाएगी, जबकि रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। उदाहरण के लिए - जहाँ हिंदी में 'क' के लिए एक लिपि चिन्ह है, वहीं रोमन में छहा, ब्, बा,बब,बी ऐसे ही ब से कहीं 'स' का बोध होता है तो कहीं 'क' का और कहीं 'च' का। स्वर के लिए रोमन में पाँच लिपि चिह्न (ं,म,प,व,न) हैं, जिससे अंग्रेजी में इक्कीस स्वरों का काम

लिया जाता है। कहने का तात्पर्य है कि लिपि चिह्न निर्माण के लिए ध्वनियों का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है।

संस्कृत में ड़ और ढ़ ध्वनियाँ नहीं थीं, पर हिंदी में हैं। संस्कृत में क्रीडति, पीडा शब्द था जो आज हम इसका उच्चारण क्रीड़ति और पीड़ा करते हैं। दृढ, गूढ, रूढ संस्कृत शब्दों का उच्चारण आज दृढ़, गूढ़ और रूढ़ हो गया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनियों का सही-सही उच्चारण उत्तम भाषा का द्योतक है। किसी भाषा पर तब तक अच्छी पकड़ नहीं बन सकती जब तक उन भाषाओं की ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण करने का ज्ञान न हो। अतः यदि हिंदी भाषा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना है तो हिंदी की ध्वनियों का सही उच्चारण और अक्षर ज्ञान आवश्यक है। इससे न केवल हिंदी अच्छी बोली जा सकेगी, बल्कि हिंदी भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा।

हिंदी की ध्वनियाँ

हिन्दुस्तानी बोली

हिंदी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा है। एक तो ये जिस रूप में लिखी जाती है, बिल्कुल उसी तरह बोली जाती है, किन्तु अंग्रेजी में ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए, बी(ठ) यू(न्) टी(ज्) का उच्चारण 'बट' है तो पी(च्) यू(न्) टी(ज्) का 'पुट' होता है, जबकि या तो दूसरे शब्द का उच्चारण 'पट' होना चाहिए या फिर पहले का 'बुट' एक ही स्वर कहीं 'यु', 'यू' या 'उ' है तो कहीं 'अ' है। इसी तरह अरबी लिपि में तीन स्वरों से तेरह स्वरों का काम लिया जाता है। हिंदी में ऐसा नहीं है। इसमें लेखन और उच्चारण में बहुत अधिक शुद्धता और समानता मौजूद है। अनुनासिक, अनुस्वार और विसर्ग चिह्नों के प्रयोग ने इसे और वैज्ञानिक बना दिया है। बीसवीं सदी में जब हिंदी ने यूरोपीय भाषाओं से तथा अरबी-फारसी से शब्द अपनाए तो इसके लिए नए चिह्न भी ग्रहण किएद्य जैसे– 'डॉक्टर' शब्द अंग्रेजी से आया है, इसका पहला स्वर है- 'ऑ'द्य चूंकि हिंदी में यह स्वर उपलब्ध नहीं था, यहाँ 'आ' तो थाय 'ऑ' नहीं था, इसलिए हिंदी में अंग्रेजी से आए ऐसे शब्दों के उच्चारण के लिए 'ऑ' चिह्न को अपना लिया गयाद्य इसी प्रकार अरबी-फारसी के कुछ शब्दों के सटीक उच्चारण के लिए हिंदी ने पाँच नई ध्वनियाँ अपनाई- क, ख, ग, ज और फद्य जाहिर है, इससे

हिंदी की शब्द-संपदा तो बढ़ी ही, इसमें भावों को और अधिक सूक्ष्मता तथा स्पष्टता से अभिव्यक्त करने की शक्ति भी आई।

हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता की दूसरी विशेषता है- इसके शब्दों के उच्चारण की सटीकताद्य हिंदी भाषा की वर्णमाला में दो वर्ग हैं- स्वर और व्यंजना। इन दोनों वर्गों की ध्वनियों को इतने वैज्ञानिक तरीके से व्यवस्थित किया गया है कि इनके द्वारा किसी भी अभाषी व्यक्ति को हिंदी का पूरी सरलता के साथ शुद्ध उच्चारण करना सिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि हम 'उच्चारण के स्थान' के आधार पर हिंदी की स्वर और व्यंजन ध्वनियों का बंटवारा करना चाहें, तो आसानी से किया जा सकता है। स्वर ध्वनियों के उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि की सहायता नहीं ली जाती। वायु मुखगुहा से बिना किसी अवरोध के बाहर निकलती है, किन्तु व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरों की सहायता ली जाती है। व्यंजन वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में भीतर से आने वाली वायु मुखगुहा में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में बाधित होती है। मुखगुहा के उन 'लगभग अचल' स्थानों को उच्चारण बिन्दु कहते हैं, जिनको 'चल वस्तुएँ' छूकर जब ध्वनि-मार्ग में बाधा डालती हैं तो ध्वनियों का उच्चारण होता है। मुखगुहा में 'अचल उच्चारक' मुख्यत: मुखगुहा की छत का कोई भाग होता है, जबकि 'चल उच्चारक' मुख्यत: जिह्वा, नीचे वाला ओष्ठ, तथा श्वासद्वार (ग्लोटिस) होते हैं। यानी कुछ ध्वनियों का उच्चारण कंठ, तालु, मूर्द्धा, दंत तथा ओष्ठ से किया जाता है तो कुछ का मुख के अंगों जैसे कंठ़तालु, कंठ़ओष्ठ, दंत़ओष्ठ, और मुख़नाक से संयुक्त रूप से भी किया जाता है।

आइए, हिंदी की सभी ध्वनियों का उनके उच्चारण स्थान के आधार पर वर्गीकरण करते हैं-

कंठ्य ध्वनियाँ- इस वर्ग की सभी ध्वनियों का उच्चारण कंठ से होता है। इस वर्ग की ध्वनियाँ हैं- अ, आ (स्वर)य क, व, ग, घ, ङ (व्यंजन)।

तालव्य ध्वनियाँ- जिस ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का मध्य भाग तालु से स्पर्श करता है, उन्हें तालव्य कहते हैं। इ, ई (स्वर)य च, छ, ज, झ, ञ, श, य (व्यंजन)।

मूर्द्धन्य ध्वनियाँ- इसके अंतर्गत वे ध्वनियाँ रखी गई हैं, जिनका उच्चारण मुर्द्धा से होता है, जैसे- ट, ठ, ड, ढ, ण, ष (सभी व्यंजन ध्वनियाँ)।

दन्त्य ध्वनियाँ- त, थ, द, ध, न, र, ल, स, क्ष (सभी व्यंजन ध्वनियाँ)।

ओष्ठ्य ध्वनियाँ- जो ध्वनियाँ दोनों होंठों के स्पर्श से उत्पन्न होती है, उन्हें ओष्ठ्य कहते हैं। हिंदी में प, फ, ब, भ, म ध्वनियाँ ओष्ठ्य हैं।

अनुनासिक ध्वनियाँ- इन ध्वनियों का उच्चारण मुंह और नाक दोनों के सहयोग से होता है। इनके उच्चारण के दौरान कुछ वायु नाक से निकलते हुए एक अनुगूंज-सी पैदा करती है। हिंदी की व्यंजन ध्वनियों का प्रत्येक वर्ग पाँच वर्णों का है, जो एक ही स्थान से उच्चारित होते हैं, जैसे- क, ख, ग, घ, ङ या च, छ, ज, झ, ञ, या ट, ठ, ड, ढ, ण या त, थ, द, ध, न अथवा प, फ, ब, भ, मद्य इनके प्रत्येक वर्ग की अंतिम ध्वनि अर्थात ङ, ञ, ण, न और म अनुनासिक ध्वनि है। देवनागरी लिपि में अनुनासिकता को चन्द्रबिंदु (ँ) द्वारा व्यक्त किया जाता है। किंतु जब स्वर के ऊपर मात्र हो तो चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिंदु (ं) लगाया जाता है, जैसे - अँ, ऊँ, ऐं, ओं आदि। अनुस्वार भी इसी के अंतर्गत आते हैं।

दन्त्योष्ठ्य ध्वनियाँ- जिन व्यंजनों का उच्चारण दन्त और ओष्ठ की सहायता से होता है, उन्हें दन्त्योष्ठ्य व्यंजन ध्वनियाँ कहते हैं। जैसे–फ, व।

कंठ-तालव्य ध्वनियाँ- इसमें वे दो स्वर ध्वनियाँ आती हैं, जिनका उच्चारण कंठ और तालु के सहयोग से होता है। जैसे- ए और ऐ।

कंठोष्ठ्य ध्वनियाँ- इन ध्वनियों का जन्म कंठ और ओष्ठों के सहयोग से होता है, जैसे ओ और औ।

जिह्वामूलक ध्वनियाँ- अरबी-फारसी से हिंदी में अपनाई गई तीन ध्वनियों का उच्चारण जिह्वा के बिलकुल पीछे के भाग (मूल) से होता है। ये हैं- क, ख और ग।

वर्त्स्य ध्वनियाँ- इसके अंतर्गत अरबी-फारसी की ज और फ की ध्वनि आती है।

काकल्य- जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में मुखगुहा खुली रहती है और वायु बन्द कंठ को खोलकर झटके से बाहर निकल पड़ती है उसे काकल्य व्यंजन ध्वनियाँ कहते हैं। जैसे हिंदी में 'ह'। यह ध्वनि हिंदी में स्वरों की तरह ही बिना किसी अवरोध के उच्चरित होती है। हिंदी में 'ह' महाप्राण अघोष ध्वनि है।

आइए, हिंदी की ध्वनियों का उनके उच्चारण प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण करते हैं-

स्पर्श- स्पर्श ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ हैं, जिसके उच्चारण में मुख-विवर में कहीं न कहीं हवा को रोका जाता है और हवा बिना किसी घर्षण के मुँह से निकलती है। प, फ, ब, भ, य, द, ध, ट, ठ, ड, ढ, क, ख, ग, घ आदि के उच्चारण में हवा रुकती है। अतः इन्हें स्पर्श ध्वनियाँ कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें स्टाप या एक्सप्लोसिव ध्वनियाँ तथा हिंदी में स्फोट ध्वनियाँ भी कहते हैं।

स्पर्श संघर्ष- जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा तालु के स्पर्श के साथ-साथ कुछ घर्षण भी करती हुई आए तो ऐसी ध्वनियाँ स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ होती है। जैसे–च, छ, ज, झ।

संघर्षी- वह व्यंजन जिसके उच्चारण में वायु मार्ग संकुचित हो जाता है और वायु घर्षण करके निकलती है। जैसे–फ, ज, स

लुंठित- इन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वानोक में लुण्ठन या आलोड़न क्रिया होती है। हिंदी की 'र' ध्वनि प्रकम्पित या लुंठित वर्ग में आती है।

पार्श्विक- हिंदी की 'ल' ध्वनि पार्श्विक ध्वनि है, किंतु जिह्वानोक के दोनों तरफ से हवा के बाहर निकलने का रास्ता है। दोनों तरफ (पार्श्वी) से हवा निकलने के कारण इन ध्वनियों को पार्श्विक ध्वनियाँ कहा जाता है।

उत्क्षिप्त- उत्क्षिप्त ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में जिह्वानोक जिह्वाग्र को मोड़कर मूर्धा की ओर ले जाते हैं और फिर झटके के साथ जीभ को नीचे फेंका जाता है। हिंदी की 'ड', 'ढ' आदि ध्वनियाँ उत्क्षिप्त हैं।

नासिक्य- इन व्यंजनों के उच्चारण में कोमलतालु नीचे झुक जाती है। इस कारण श्वासवायु मुख के साथ-साथ नासारन्ध्र से बाहर निकलती है। इसीलिए व्यंजनों में अनुनासिकता आ जाती है। हिंदी में नासिक्य व्यंजन इस प्रकार है–म, म्ह, न, न्ह, ण, ङ।

आइए, अब वायु की शक्ति के आधार पर हिंदी की ध्वनियाँ का वर्गीकरण करते हैं-

अल्पप्राण- जिन ध्वनियों के उच्चारण में फेफड़ों से कम श्वास वायु बाहर निकलती है, उन्हें अल्पप्राण कहते हैं। हिंदी की प, ब, त, द, च, ज, क, ल, र, व, य आदि ध्वनियाँ अल्पप्राण है।

महाप्राण- जिन ध्वनियों के उच्चारण में फेफड़ों से अधिक श्वास वायु बाहर निकलती है, उन्हें महाप्राण कहते हैं। जैसे– ख, घ, फ, भ, थ, ध, छ, झ आदि महाप्राण है।

आइए, घोषत्व की दृष्टि से हिंदी की ध्वनियों को जानते हैं-

अघोष- जिन ध्वनियों के उच्चारण में फेफड़ों से श्वास वायु स्वर-तंत्रियों से कंपन करती हुई नहीं निकलती अघोष कहलाती है। जैसे- क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स।

सघोष- जिन ध्वनियों के उच्चारण में श्वास वायु स्वर-तंत्रियों में कंपन करती हुई निकलती है, उन्हें सघोष कहते हैं। जैसे–ग, घ, ङ, ञ, झ, म, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म तथा य, र, ल, व, ड, ढ ध्वनियाँ सघोष है।

आइए, हिंदी की ध्वनियों की कुछ अन्य विशेषताएँ भी समझते हैं-

दीर्घता–किसी ध्वनि के उच्चारण में लगने वाले समय को दीर्घता कहा जाता है। किसी भाषा में दीर्घता का कोई सामान्य रूप नहीं होता। दीर्घता का अर्थ है किसी ध्वनि का अविभाज्य रूप में लंबा होना। हिंदी व अंग्रेजी में जहाँ ह्रस्व व दीर्घ दो वर्ग मिलते हैं, वहीं संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत तीन मात्राओं की चर्चा की गई है।

बलाघात- ध्वनि के उच्चारण में प्रयुक्त बल की मात्रा को बलाघात कहते है। बलाघात युक्त ध्वनि के उच्चारण के लिए अधिक प्राणशक्ति अर्थात् फेफड़ो, से निकलने वाली वायु का उपयोग करना पड़ता है। बलाघात की एकाधिक सापेक्षिक मात्राएँ मिलती हैं- (क) पूर्ण बलाघात (ख) दुर्बल बलाघात।

लगभग सभी भाषाओं में वाक्य बलाघात का प्रयोग होता है। साधारणत: संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण और क्रिया विशेषण बलाघात युक्त होते हैं और अव्यय तथा परसर्ग बलाघात वहन नहीं करते हैं। अंग्रेजी में शब्द बलाघात और वाक्य बलाघात दोनों मिलते हैं। हिंदी में बलाघात का महत्व शब्द की दृष्टि से नहीं, वाक्य की दृष्टि से होता है। यथा–यह मोहन नहीं राम है। यहाँ विरोध के लिए राम पर बल दिया जाता है। हिंदी में बल परिवर्तन से शब्द का अर्थ तो नहीं बदलता, पर उच्चारण की स्वाभाविकता प्रभावित हो जाती है।

अनुतान–स्वन-यंत्र में उत्पन्न घोष के आरोह-अवरोह के क्रम को अनुतान कहते है। अन्य शब्दों में स्वर-तंत्रियों के कंपन से उत्पन्न होने वाले सुर का उतार चढ़ाव ही अनुतान है। साधारणत: मानव की सुर-तन्त्रियाँ 42 आवृत्ति प्रति सेकेण्ड की न्यूनतम सीमा से लेकर 2400 की अधिकतम सीमा के मध्य कम्पित होती है। कंपन की मात्र व्यक्ति की आयु व लिंग पर भी निर्भर करती है। सुर-तन्त्रियाँ जितनी पतली व लचीली होंगी कंपन उतना ही अधिक होगा तथा मोटी व लम्बी सुर तन्त्रियों के कंपन की मात्र कम होंगी। यह कंपन यदि वाक्य के स्तर पर घटता-बढ़ता है तो उसे अनुतान कहा जाता है और जब शब्द

के स्तर पर घटित होता है तब उसे तान कहते हैं। अनुतान की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्य को ही एक इकाई के रूप में लिया जाता है, पृथ्क–पृथ्क् ध्वनियों को नहीं। सुर के अनेक स्तर हो सकते है, परन्तु अधिकांश भाषाओं में उसके तीन स्तर माने जाते हैं–उच्च, मध्य और निम्न।

उदाहरण के लिए हिंदी में निम्नलिखित वाक्य अलग–अलग सुर–स्तरों में बोलने पर अलग–अलग अर्थ देता है–

वह आ रहा है। (सामान्य कथन), 2. वह आ रहा है? (प्रश्न), 3. वह आ रहा है ! (आश्चर्य)

विवृत्ति–ध्वनि क्रमों के मध्य उपस्थित व्यवधान को विवृत्ति कहा जाता है। वस्तुतः एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि पर जाने की (अर्थात् उच्चारण की) दो विधियाँ हैं। अन्य शब्दों में संक्रमण दो प्रकार का होता है। जब एक ध्वनि के बाद दूसरी ध्वनि का उच्चारण अव्यवहृत रूप से किया जाता है, तो उसे सामान्य संक्रमण कहते हैं। इसी को आबद्ध संक्रमण कहा गया है। जब एक ध्वनि के बाद दूसरी ध्वनि का उच्चारण क्रमिक न होकर कुछ व्यवधान के साथ किया जाता है, तब उसे मुक्त संक्रमण कहते हैं। मुक्त संक्रमण ही विवृत्ति है। हिंदी में विवृत्ति के उदाहरण हैं–

तुम्हारे = तुम. हारे, हाथी = हाथ. ही।

3

रूप विज्ञान

प्रत्येक भाषा कुछ सीमित अर्थहीन इकाइयों का प्रयोग करती है, जिनके द्वारा असंख्य अर्थपूर्ण इकाइयों की रचना की जाती है। इन सीमित अर्थहीन इकाइयों को हम सामान्य भाषा में 'ध्वनि' कहते हैं, जिसे भाषा विज्ञान में 'स्वन' नाम दिया गया है। जब ये किसी भाषा विशेष की ध्वनि व्यवस्था को गठित करते हैं, तो स्वनिम कहलाते हैं। स्वनिमों द्वारा विभिन्न स्तरों पर अर्थवान इकाइयों की रचना की जाती है। इनमें पहला स्तर 'रूप' का है। इसके बाद क्रमशः शब्द, पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य, और प्रोक्ति आते हैं। 'रूप' की संकल्पनात्मक इकाई रूपिम है। रूप, रूपिम और इनसे जुड़ी इकाइयों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन रूप विज्ञान में किया जाता है, जिसका विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

रूप विज्ञान–स्वरूप एवं प्रकार

'रूप विज्ञान' भाषा विज्ञान की एक शाखा है, जिसके अध्ययन की केंद्रीय इकाई 'रूपिम' है। अंग्रेजी में रूप विज्ञान के लिए 'मार्फोलॉजी' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो 'Morph' और 'सवहल' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'मार्फ' के लिए हिंदी में 'रूप' शब्द का प्रयोग होता है और 'लॉजी' (सवहल) का अर्थ है- 'विज्ञान'। विभिन्न भाषावेत्ताओं ने रूप विज्ञान को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। आगे कुछ प्रमुख भाषाविदों की परिभाषाएँ उद्धृत की जा रही हैं-

नाइडा के अनुसार, "रूप विज्ञान रूपिम तथा शब्द-निर्माण में उसकी व्यवस्था का अध्ययन करता है"।

ब्लाक तथा ट्रेगर का मत है कि रूप विज्ञान शब्द-गठन का विवेचन करता है।

रूप विज्ञान

कैरोल के अनुसार, "रूप विज्ञान उस पद्धति अथवा प्रणाली का अध्ययन है, जिसके अनुसार शब्द-निर्माण किया जाता है और निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि रूप विज्ञान का संबंध रूपिमों की पहचान, शब्द-निर्माण में उनके क्रम, उनमें होने वाले परिवर्तन तथा विविध व्याकरणिक संरचनाओं में पाई जाने वाली व्यवस्था का अध्ययन है।"

(उद्धृत हिंदी-रूप विज्ञान, (1981) चमनलाल अग्रवाल)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रूप विज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें रूपिमों के अर्थ, स्वरूप, अनुक्रम, उनकी प्रतीति और प्रकार्य आदि के आधार पर उनके भेदों का किसी भाषा विशेष की संरचना के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।

रूप विज्ञान के प्रकार

(क) अध्ययन की दिशा के आधार पर-रूप विज्ञान के अध्ययन की दिशा के आधार पर रूप विज्ञान के तीन प्रकार हैं-

वर्णनात्मक रूप विज्ञान- इसमें किसी भाषा या बोली के किसी एक समय की शब्द औरध्या पदरचना का अध्ययन होता है।

ऐतिहासिक रूप विज्ञान- इसमें भाषा या बोली के विभिन्न कालों की शब्द औरध्या पदरचना का अध्ययन कर उसमें रूप विज्ञान का इतिहास या विकास प्रस्तुत किया जाता है।

तुलनात्मक रूप विज्ञान- इसमें दो या अधिक भाषाओं की शब्द औरध्या पदरचना का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

(ख) रूपिम योग की प्रक्रिया के आधार पर-रूपिम योग की प्रक्रिया के आधार पर इसके दो भेद किए जाते हैं-

व्युत्पादक रूप विज्ञान- इसमें मुक्त रूपिम या शब्द में व्युत्पादक रूपिमों को जोड़कर नए शब्द बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

रूपसाधक रूप विज्ञान- इसमें शब्दों में रूपसाधक रूपिमों को जोड़कर पद बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन की विषयवस्तु

भाषाई स्तर

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, भाषा विज्ञान में भाषा का अध्ययन निम्नलिखित स्तरों पर किया जाता है-

स्वन–स्वनिम–रूपिम–शब्द–पद दृपदबंध–वाक्य–प्रोक्ति

इनमें रूप विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का विस्तार रूपिम से लेकर शब्द/पद तक है। इसे निम्नांकित चित्र में देख सकते हैं-

रूपिम

शब्द पद

इस चित्र में तीर का पहला निशान रूपिमों को मिलाकर शब्द और पद बनाए जाने को संकेतित करता है तथा दूसरा निशान शब्द या पद का विश्लेषण रूपिमों में किए जाने की ओर संकेतित करता है। अत: रूप विज्ञान में भाषा के रूपिम स्तर तथा शब्द/पद स्तर दोनों का अध्ययन किया जाता है।

रूप, रूपिम और उपरूप

रूपिम स्तर पर रूप विज्ञान में रूप, रूपिम और उपरूप तीनों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है। साथ ही इनमें परस्पर संबंध और अंतर को भी रेखांकित किया जाता है। इन तीनों की संकल्पना को संक्षेप में इस प्रकार देख सकते हैं-

रूप– रूप एक भौतिक इकाई है, जो भाषिक कथनों में प्रयुक्त किया जाता है। किसी वाक्य में प्रयुक्त ध्वनियों का छोटा से छोटा अनुक्रम जिसका अर्थ होता है, रूप कहलाता है। संकल्पना की दृष्टि से रूप मूर्त इकाई होता है।

रूपिम- भाषा की लघुतम अर्थवान इकाई जिसे और अधिक सार्थक खंडों में विभक्त नहीं किया जा सकता है, रूपिम कहलाता है। दूसरे शब्दों में, रूपिम स्वनिमों का ऐसा सबसे छोटा अनुक्रम है, जो कोशीय अथवा व्याकरणिक दृष्टि

से सार्थक होता है। ब्लूमफील्ड के अनुसार, "रूपिम वह भाषाई रूप है, जिसका भाषा विशेष के किसी अन्य रूप से किसी प्रकार का ध्वन्यात्मक और अर्थगत सादृश्य नहीं है"। रूपिम एक अमूर्त संकल्पना है। रूपिम को 'A' चिह्न के माध्यम से संकेतिक किया जाता है। कुछ भाषाओं में सभी रूपिम मुक्त होते हैं और अर्थ को स्थिर रखते हुए उनका पुनर्विभाजन नहीं हो सकता।

उपरूप- दो या दो से अधिक ऐसे रूप, जिनमें कुछ ध्वन्यात्मक विभेद होने के बावजूद उनसे एक ही अर्थ निकलता हो, तथा वे परिपूरक वितरण में हों, उपरूप कहलाते हैं। ये रूप एक ही परिवेश व संदर्भ में नहीं आते, अपितु मिलकर वे एक रूपिम के सभी संभव संदर्भों को पूरा करते हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि उपरूप वे रूप हैं, जो एक दूसरे का स्थान नहीं लेते हैं। यदि एक दूसरे का स्थान ले भी लेते हैं तो अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

वितरण

वितरण एक पद्धति है जिसका प्रयोग रूपिमों और उपरूपों के निर्धारण में किया जाता है। जब दो या दो से अधिक ऐसे रूप प्राप्त होते हैं, जो एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, तो वे दो स्वतंत्र रूपिम हैं या एक ही रूपिम के उपरूप इसका निर्धारण वितरण के माध्यम से किया जाता है।

वितरण के भेद- मूल रूप से वितरण के दो भेद किए जाते हैं-

1. व्यतिरेकी वितरण
2. अव्यतिरेकी वितरण।

व्यतिरेकी वितरण- जब दो रूप समान शाब्दिक (या पदबंधीय) परिवेश या संदर्भ में आते हैं और इनका अर्थ अलग-अलग होता है तो वे परस्पर व्यतिरेकी वितरण में होते हैं। जैसे- हँसी और हंसी एक ही तरह के दिखने वाले दो शब्द हैं, किंतु दोनों का अर्थ अलग-अलग है। अत: दोनों परस्पर व्यतिरेकी वितरण में हैं।

अव्यतिरेकी वितरण- यह दो रूपों के परस्पर व्यतिरेकी नहीं होने की अवस्था है। इसके दो उपभेद हैं-

(क) परिपूरक वितरण–जब दो या दो से अधिक रूपों में कुछ ध्वन्यात्मक विभेद होता है, किंतु उनका कोशीय अर्थ या व्याकरणिक प्रकार्य समान होता है तो वे आपस में परिपूरक वितरण में होते हैं। ऐसे रूपिम आपस

में उपरूप होते हैं। जैसे- 'चिड़ियाँ' और 'रातें' शब्दों में बहुवचन क्रमशः 'ँ' और 'एँ' द्वारा व्यक्त होता है। उक्त ध्वन्यायत्मक विभेद के बावजूद दोनों का प्रकार्य अर्थ एक ही है और इनमें से कोई भी एक दूसरे के परिवेश में नहीं आता। अतः दोनों आपस में परिपूरक वितरण में है।

(ख) स्वतंत्र वितरण–यह अव्यतिरेकी वितरण का ही एक प्रकार है। जब दो या दो से अधिक रूप इस प्रकार से वितरण में होते हैं कि दोनों का एक दूसरे के स्थान पर कहीं भी प्रयोग किया जा सकता है तो वे आपस में स्वतंत्र वितरण में होते हैं। जैसे- 'खराब' और 'खराब' दोनों का अर्थ एक ही है। साथ ही किसी भी वाक्यात्मक परिवेश में दोनों का एक दूसरे की जगह प्रयोग किया जा सकता है। अतः दोनों आपस में स्वतंत्र वितरण में है।

रूपिमिक प्रक्रियाएँ

व्युत्पादन- किसी मूल शब्द के साथ अन्य रूपिमों को जोड़कर नए कोशीय शब्द बनाने की प्रक्रिया को 'व्युत्पादन' कहते हैं। यह एक खुली प्रक्रिया है जिसमें किसी व्युत्पादित शब्द में और प्रत्यय जोड़कर नए-नए शब्द निर्मित किए जाते हैं। मुख्य रूप से इसके अंतर्गत प्रत्यय योग (पूर्व प्रत्यय/ मध्य प्रत्ययध अंत प्रत्यय जोड़ना), समासीकरण (और संधीकरण) पुनरुक्त शब्द निर्माण आदि आते हैं। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

अ . ज्ञान = अज्ञान (उपसर्ग/पूर्व प्रत्यय योग)
लूट (क्रिया) .एरा = लुटेरा (संज्ञा)
दान (संज्ञा) . ई = दानी (विशेषण)
सुंदर (विशेषण) . ई = सुंदरी (संज्ञा)
लड़का (सज्ञा) . पन = लड़कपन (भाववाचक संज्ञा)

रूपसाधन- शब्दों में प्रत्ययों को जोड़कर 'पद' व्याकरणिक शब्द बनाने की प्रक्रिया रूपसाधन कहलाती है। हिंदी में रूपसाधन को पदरचना प्रक्रिया भी कहा गया है। प्रत्ययों को जोड़कर शब्द के रूपप रिवर्तन की यह प्रक्रिया व्याकरणिक कोटियों के आधार पर होती है। यह एक बंद प्रक्रिया है, अर्थात किसी शब्द के साथ रूपसाधक प्रत्यय लग जाने के बाद उसमें और कोई प्रत्यय नहीं जोड़ा जा सकता है। जैसे- लड़की . याँ = लड़कियाँ, भाषा . एँ = भाषाएँ आदि।

इन उदाहरणों में मूल शब्द के साथ रूपसाधक प्रत्ययों को जोड़कर एकवचन से बहुवचन बनाया गया है। रूपसाधन द्वारा पदों (व्याकरणिक शब्दों) का निर्माण किया जाता है इसलिए कुछ विद्वानों द्वारा इसे पदनिर्माण या पदसाधन भी कहा गया है।

उपर्युक्त दोनों प्रक्रियाओं को जिन प्रत्ययों द्वारा संपन्न किया जाता है, उन्हें व्युत्पादक और रूपसाधक प्रत्यय कहते हैं। इनमें निम्नलिखित अंतर हैं-

व्युत्पादक रूपिम

1. व्युत्पादक प्रत्यय लगने के बाद बना शब्द स्वतंत्र शब्द की भाँति भाषा में प्रयुक्त हो सकता हैं।
2. व्युत्पादक प्रत्ययों के लगने से बने शब्द नए शब्द होते हैं। प्रायः उनका शब्द-वर्ग बदल जाता है।
3. व्युत्पादक प्रत्यय लगकर बने शब्दों में पुनः व्युत्पादक प्रत्यय लगाकर नए शब्द बनाए जा सकते हैं।
4. भाषा में व्युत्पादक प्रत्ययों की संख्या अधिक पाई जाती है।

रूपसाधक प्रत्यय

1. रूपसाधक प्रत्यय लगकर बना शब्द स्वतंत्र शब्द की भाँति प्रयुक्त नहीं हो सकता है।
2. रूपसाधक प्रत्यय लगाकर नया शब्द नहीं, अपितु शब्द के विभिन्न व्याकरणिक रूप प्राप्त होते हैं।
3. रूपसाधक प्रत्यय लग जाने के बाद फिर उस शब्द में कोई व्युत्पादक प्रत्यय नहीं लग सकता है।
4. रूपसाधक प्रत्यय प्रायः कम संख्या में होते है।

रूप विश्लेषण

किसी पद (व्याकरणिक शब्द) के निर्माण में लगे मुक्त और बद्ध रूपिमों और उनकी व्यवस्था को प्राप्त करना रूप विश्लेषण है। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक सी. एफ. हॉकेट (C- F- Hockett) के 'Two models of grammatical description' (1954) में निम्नलिखित दो प्रतिदर्शों की चर्चा की गई है-

मद और विन्यास

'मद' एवं 'विन्यास' 'व्याकरणिक' की एक पद्धति है। इसमें किसी निर्मित (व्युत्पादित) शब्द अथवा पद में आए हुए रूपिमों और उनके क्रम या विन्यास का विश्लेषण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, रूप-विश्लेषण में मूल शब्दों (मुक्त रूपिमों) और उनमें लगे हुए उपसर्गों एवं प्रत्ययों (ब) रूपिमों) का विश्लेषण किया जाता है। मद और विन्यास पद्धति के अनुसार प्रत्येक पद एक से अधिक मदों के एक निश्चित व्यवस्था में मिलने से बनता है। अत: किसी शब्द या पद का विश्लेषण करते हुए उसमें आए हुए मदों तथा उनके विन्यास को ज्ञात कर सकते हैं। जैसे-

दुकानें (बहुवचन) = दुकान (एकवचन) . एँ (प्रत्यय)

मकान (बहुवचन) = मकान (एकवचन) . 0 (प्रत्यय)

प्रथम उहादरण में 'दुकानें' पद में मूल शब्द 'दुकान' और प्रत्यय 'एँ' दो मद प्राप्त होते हैं, और इनका क्रम है- दुकान (मद-1) . एँ (मद-2)। यह क्रम दोनों मदों का विन्यास है, जिसे बदला नहीं जा सकता है। अर्थात 'एँ . दुकान' नहीं लिखा जा सकता है। दूसरे शब्द 'मकान' का बहुवचन रूप 'मकान' ही है इसमें कोई प्रत्यय दिखाई नहीं दे रहा है। अत: यहाँ 'शून्य प्रत्यय' मानकर बहुवचन निर्माण का विन्यास बताया जा सकता है। बद्ध रूपिम मूल शब्द के पहले भी आ सकते हैं। ऐसी स्थिति में 'मद-1' के स्थान पर बद्ध रूपिम होंगे। उपसर्गों द्वारा निर्मित शब्दों में यह देखा जा सकता है- अज्ञान = अ . ज्ञान।

निर्मित शब्द = मद-1 मद-2।

मद और प्रक्रिया

मद और प्रक्रिया के अनुसार सभी पद एक से अधिक मदों के केवल एक निश्चित व्यवस्था में ही मिलने से नहीं बने होते हैं, बल्कि कुछ पदों के निर्माण में रूपिमों के योग के साथ-साथ कोई परिवर्तन भी हुआ रहता है। अत: उनका विश्लेषण करते हुए घटक मदों, उनकी व्यवस्था और और पद निर्माण प्रक्रिया तीनों बताने की आवश्यकता पड़ती है। मूल मद, उनकी व्यवस्था और नए रूप के निर्माण में हुई प्रक्रिया के आधार पर नियमों की स्थापना की जाती है। जैसे-

लड़के (बहुवचन) = लड़का (एकवचन) . ए (प्रत्यय)

मद-1 . मद-2 . प्रक्रिया (आझए)

उपर्युक्त उदाहरण में देखा जा सकता है कि 'लड़के' पद के निर्माण में दो मद 'लड़का' और 'ए' लगे हैं, जिनमें 'लड़का' मद-1 और 'ए' मद-2 हैं, किंतु केवल इनके योग से ही 'लड़के' पद निर्मित नहीं हुआ है, बल्कि लड़का शब्द के अंतिम वर्ण 'आ' (अथवा आ का ए में परिवर्तन) का लोप भी हुआ है।

शब्द और रूपावली

संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन के व्याकरणों से प्रेरित यह एक प्रतिष्ठित एवं परंपरागत निदर्श है और रूप प्रक्रियात्मक विश्लेषण संबंधी दो अन्य निर्देशों मद और विन्यास तथा मद और प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। ग्रीक तथा लैटिन व्याकरणों में रूपावली के एक शब्द-रूप को यादृच्छिक ढंग से प्रमुख रूप से चुन लिया गया है।

क्रिस्टल ने रूपावली की परिभाषा इस प्रकार दी हैं कि।

शब्द-वर्ग और व्याकरणिक कोटियाँ

शब्द-वर्ग

प्रत्येक भाषा में शब्दों का वर्गीकरण किया जाता है। पारंपरिक व्याकरणक में शब्दों का वर्गीकरण कहीं उनके व्यवहार के आधार पर तथा कहीं उनके अर्थ के आधार पर किया गया है, उदाहणार्थ- संज्ञा को व्यक्ति, वस्तु, स्थान और भाव का नाम कहकर परिभाषित किया गया। संज्ञा की यह परिभाषा अर्थ पर आश्रित है। इसी प्रकार विशेषण की परिभाषा- 'जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता हो, प्रकार्य पर निर्भर है। भाषिक शब्दों का वर्गीकरण उनके रूप और प्रकार्य अर्थात उनके स्वनिमिक, रूपिमिक व वाक्यीय गुणों के आधार पर किया जाता है।

प्रत्येक भाषा की संरचना के अनुरूप उसके शब्द-वर्गों की संख्या और प्रकृति का निर्धारण होता है। भारतीय संस्कृत वैयाकरण यास्क ने नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार वर्ग किए हैं। पाणिनि ने सुबंत और तिङन्त केवल दो वर्ग बनाए हैं। हिंदी में निम्नलिखित आठ शब्द-वर्ग हैं-

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण

4. क्रिया
5. क्रियाविशेषण
6. संबंधसूचक
7. योजक
8. विस्मयादिबोधक

व्याकरणिक कोटियाँ

वे अभिलक्षण जिनकी रूपात्मक अभिव्यक्ति शब्द-वर्गों के माध्यम से होती है व्याकरणिक कोटि कहलाते हैं। अन्य शब्दों में, किसी मूल शब्द में संबंध तत्त्व के जुड़ने के कारण वह पद बनता है। संबंध तत्त्व के द्वारा व्यक्त अर्थतत्त्व (मूल शब्द) के लिंग, वचन, पुरूष, काल, आदि भेदों को व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं।

व्याकरणिक कोटि का प्रमुख उद्देश्य भाषा में अभिव्यंजना संबंधी सूक्ष्मता और निश्चयात्मकता लाना है। विभिन्न भाषाओं में इनकी संख्या में एकरूपता नहीं मिलती है और न ही ये सार्वभाषिक एवं समानरूप में वर्गीकृत हैं अर्थात भाषाओं में इनकी संख्या अलग-अलग हो सकती है। हिंदी में निम्नलिखित आठ व्याकरणिक कोटियाँ हैं-

1. लिंग
2. वचन
3. पुरुष
4. कारक
5. काल
6. पक्ष
7. वृत्ति
8. वाच्य।

रूप विज्ञान और स्वनिमविज्ञान

भाषा में शब्द और पद निर्माण में कुछ ऐसी भी स्थितियाँ पाई जाती है जिनमें रूपिमिक योग के साथ-साथ स्वनिमिक परिवर्तन भी होते हैं। अत: ऐसी स्थितियों के अध्ययन के लिए रूप विज्ञान और स्वनिमविज्ञान दोनों की आवश्यकता पड़ती है। भाषा वैज्ञानिकों द्वारा दोनों के योग से बनने वाले इस

संधिक्षेत्र को रूपस्वनिमविज्ञान नाम दिया गया है। इसमें शब्द, रूप, या पद स्तरों पर दो रूपिमों के एक साथ मिलने पर होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। जैसे–

घोड़ा दौड़ = घुड़दौड़, हाथी ओं = हाथियों, भालू ओं =भालुओं।

उपर्युक्त उदाहरणों में देखा जा सकता है कि दो रूपिमों के योग में मूल रूपिम की आंतरिक संरचना में भी स्वनिमिक परिवर्तन हुआ है। इसकी व्याख्या रूप विज्ञान और स्वनिमविज्ञान दोनों स्तरों के अध्ययन द्वारा ही की जा सकती है। 'संधि' मूल रूप से रूपस्वनिमविज्ञान का ही अध्ययन क्षेत्र है, जिसमें दो शब्दों या रूपों के मिलने पर होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण किया जाता है।

रूपस्वनिमिक परिवर्तन रूप या शब्द के स्तर पर दो या दो से अधिक रूपिमों के एक साथ आने पर घटित होते हैं। यह मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं–

बाह्य परिवर्तन– जब कोई मुक्त और बद्ध रूपिम आदि या अंत में जुड़ते हैं तो उनके जुड़ने के बाद उस शब्द के बाहरी ध्वनि (या स्वन) में परिवर्तन हो जाता है, उसे बाह्य रूपस्वनिमिक परिवर्तन कहते हैं। जैसे–

राम़्अवतार= रामावतार

अति़्अंत= अत्यंत आदि

यहाँ पहले उदाहरण में जब दो मुक्त रूपिम आपस में जुड़ रहे हैं तो जुड़ने के बाद एक नए शब्द का निर्माण हो रहा है, लेकिन निर्मित शब्द में रूपस्वनिमिक परिवर्तन 'अ़ अ = आ' हो गया है। इसी प्रकार दूसरे शब्द में भी जब 'अंत' शब्द जुड़ रहा है तो प्रथम शब्द के अंतिम स्वन के स्थान पर 'य' का आगम होता है। जिसका कारण रूपस्वनिमिक परिवर्तन ही है।

आंतरिक परिवर्तन– दो रूपिमों के आपस में मिलने पर प्राप्त नए शब्द के भीतर परिवर्तन होता है तो उसे आंतरिक रूपस्वनिमिक परिवर्तन कहते हैं। जैसे– घोड़ा़ दौड़ = घुड़दौड़, समाज़ इक = सामाजिक आदि।

यहाँ 'घोड़ा' शब्द में 'दौड़' जुड़ने पर इसकी आंतरिक संरचना परिवर्तित हो गई है और यह 'घुड़' बन गया है। इसी प्रकार 'समाज' शब्द में 'इक' प्रत्यय जुड़ने पर यह 'सामाज' हो गया है।

रूपिम विज्ञान और वाक्य विज्ञान

रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान में अंत:क्रिया पद निर्माण को लेकर हमेशा से रही है। पदों के रूप में परिवर्तन केवल व्याकरणिक कोटियों के आधार पर

ही नहीं होता है बल्कि पदबंधीय या वाक्यात्मक घटकों के आने पर भी होता है। ऐसी स्थिति में रूप विज्ञान के साथ वाक्य विज्ञान का संघात होता है। हिंदी में परसर्ग योग के कारण संज्ञाओं, विशेषणों एवं क्रियाओं के बनने वाले तिर्यक रूप इसके उपयुक्त उदाहरण हैं-

लड़का, ने = लड़के ने, पीला, में = पीले में, चलना , को = चलने को आदि।

इन उदाहरणों में देखा जा सकता है कि परसर्ग योग से आकारांत शब्द एकारांत हो गए हैं। इनके अध्ययन के लिए रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान दोनों आवश्यक हैं।

रूप परिवर्तन कारण और दिशाएँ

जब किसी शब्द का एक रूप किसी कारण दूसरे रूप में परिवर्तित होता है तो उसे रूप परिवर्तन कहते हैं। भाषा परिवर्तशील है और उसकी रूपरचना में परिवर्तन होता रहता है, यद्यपि ध्वनि परिवर्तन की तुलना में यह कम होता है। कभी-कभी ये दोनों इतने समान या समीप हो जाते हैं कि इनको अलग कर पाना कठिन भी हो जाता है। रूप परिवर्तन होने पर नए रूपों के साथ पुराने रूप भी चलते रहते हैं।

रूप परिवर्तन के कारण

भाषा में रूप परिवर्तन होने के कई कारण हैं। किसी भाषा में रूप परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं-

(1) नवीनता की अभिरुचि।
(2) सरलीकरण।
(3) स्पष्टता।
(4) अज्ञानध्बल।
(5) आवश्यकता।
(6) ध्वनि-परिवर्तन।
(7) सादृश्य।
(8) संक्षेपीकरण।

रूप परिवर्तन की दिशाएँ

रूपप रिवर्तन मुख्य रूप से निम्नलिखित दिशाओं में मिलता है-

1. अतिरिक्त प्रत्यय।
2. पुराने संबंध तत्त्वों का लोप।
3. गलत प्रत्यय प्रयोग।
4. नए प्रत्यय प्रयोग।
5. मूल में परिवर्तन।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी किसी भाषा में होने वाले रूपप रिवर्तन के कारण एवं दिशाएँ हैं। जिनका अध्ययन भाषा विज्ञान की शाखा रूप विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, रूप विज्ञान भाषा विज्ञान की एक केंद्रीय शाखा है, जिसमें लघुतम अर्थवान इकाइयों का विश्लेषण रूप, रूपिम और उपरूप के रूप में किया जाता है। साथ ही व्युत्पादन और रूपसाधन की प्रक्रियाओं के माध्यम से शब्दनिर्माण और पद निर्माण की व्याख्या की जाती है। रूप विज्ञान भाषा विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा होने के साथ-साथ स्वनिम विज्ञान और वाक्य विज्ञान से भी जुड़ा हुआ है।

4

वाक्य और वाक्य के भेद

दो या दो से अधिक शब्दों के सार्थक समूह को वाक्य कहते हैं। उदाहरण के लिए 'सत्य से विजय होती है।' एक वाक्य है, क्योंकि इसका पूरा पूरा अर्थ निकलता है, किन्तु 'सत्य विजय होती।' वाक्य नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ नहीं निकलता है तथा वाक्य होने के लिए इसका अर्थ निकलना चाहिए। जैसे– 'विद्या धन के समान हैं।',षविदयांशु कल विद्यालय जायेगा।'

शब्दकोशीय अर्थ

वह पद समूह जिससे श्रोता को वक्ता के अभिप्राय का बोध हो। भाषा को भाषा वैज्ञानिक आर्थिक इकाई का बोधक पद समूह। वाक्य में कम से कम कारक (कर्तृ आदि) जो संज्ञा या सर्वनाम होता है और क्रिया का होना आवश्यक है। क्रियापद और कारक पद से युक्त साकांक्ष अर्थबोधक पद- समूह या पदोच्चय। उद्देश्यांश और विवेयांशवाले सार्थक पदों का समूह।

विशेष–नैयायिकों और अलंकारियों के अनुसार वाक्य में।

(क) आकांक्षा।

(ख) योग्यता और

(ग) आसक्ति या सन्निधि होनी चाहिए।

'आकांक्षा' का अभिप्राय यह है कि शब्द यों ही रखे हुए न हों, वे मिलकर किसी एक तात्पर्प का बोध कराते हों। जैसे, कोई कहे–'मनुष्य चारपाई पुस्तक' तो यह वाक्य न होगा। जब वह कहेगा–'मनुष्य चारपाई पर पुस्तक पढ़ता है।' तब वाक्य होगा।

'योग्यता' का तात्पर्य यह है कि पदों के समूह से निकला हुआ अर्थ असंगत या असंभव न हो। जैसे, कोई कहे–'पानी में हाथ जल गया' तो यह वाक्य न होगा।

'आसक्ति' या 'सन्निधि' का मतलब है सामीप्य या निकटता। अर्थात् तात्पर्यबोध कराने वाले पदों के बीच देश या काल का व्यवधान न हो। जैसे– कोई यह न कहकर कि 'कुत्ता मारा, पानी पिया' यह कहे–'कुत्ता पिया मारा पानी' तो इसमें आसक्ति न होने से वाक्य न बनेगा, क्योंकि 'कुता' और 'मारा' के बीच 'पिया' शब्द का व्यवधान पड़ता है। इसी प्रकार यदि काई 'पानी' सबेरे कहे और 'पिया' शाम को कहे, तो इसमें काल संबंधी व्यवधान होगा। काव्य भेद का विषय मुख्यत: न्याय दर्शन के विवेचन से प्रारंभ होता है और यह मीमांसा और न्यायदर्शनों के अंतर्गत आता है।

दर्शनशास्त्रीय वाक्यों के 3 भेद- विधिवाक्य, अनुवाद वाक्य और अर्थवाद वाक्य किए गए हैं। इनमें अंतिम के चार भेद- स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प बताए गए हैं। वक्ता के अभिप्रेत अथवा वक्तव्य की अबाधकता वाक्य का मुख्य उद्देश्य माना गया है। इसी की पृष्ठ भूमि में सस्कृत वैयाकरणों ने वाक्यस्फोट की उद्भावना की है। वाक्यपदोयकार द्वारा स्फोटात्मक वाक्य की अखंड सत्ता स्वीकृत है।

भाषा बैज्ञानिकों की दृष्टि में वाक्य संश्लेषणात्मक और विश्लेषणा- त्मक होते हैं।

शब्दा–तिमूलक वाक्य के शब्दभेदानुसार चार भेद हैं–समासप्रधान, व्यासप्रधान, प्रत्ययप्रधान और विभक्तिप्रधान। इन्हीं के आधार पर भाषाओं का भी वर्गीकरण विद्वानों ने किया है।

आधुनिक व्याकरण की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद होते हैं–सरल वाक्य, मिश्रित वाक्य और संयुक्त वाक्य।

1. कथन। उक्ति (को0)।
2. न्याय में युक्ति। उपपत्ति। हेतु
3. विधि। नियम। अनुशासन (को0)।

4. ज्योतिष में गणना की सौर प्रक्रिया (को0)।
5. प्रतिज्ञा। पूर्व पक्ष (को0)।
6. आदेश। प्रभुत्व। शासन (को0)।
7. विधिसम्मत साक्ष्य या प्रमाण (को0)।
8. वाक्प्रदत्त होना (को0)।

वाक्यांश

शब्दों के ऐसे समूह को जिसका अर्थ तो निकलता है, किन्तु पूरा-पूरा अर्थ नहीं निकलता, वाक्यांश कहते हैं। उदाहरण -

'दरवाजे पर', 'कोने में', 'वृक्ष के नीचे' आदि का अर्थ तो निकलता है, किन्तु पूरा-पूरा अर्थ नहीं निकलता इसलिये ये वाक्यांश हैं।

कर्ता और क्रिया के आधार पर वाक्य के भेद

वाक्य के दो भेद होते हैं-

उद्देश्य और

विधेय

जिसके बारे में बात की जाय उसे उद्देश्य कहते हैं और जो बात की जाय उसे विधेय कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'मोहन प्रयाग में रहता है', इसमें उद्देश्य है - 'मोहन', और विधेय है - 'प्रयाग में रहता है।'

वाक्य के भेद (पतयेक के पतयेक भेद के 5-5 उदाहरण लिखे

वाक्य भेद दो प्रकार से किए जा सकते हँ-

1. अर्थ के आधार पर वाक्य भेद।
2. रचना के आधार पर वाक्य भेद।

अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद

अर्थ के आधार पर आठ प्रकार के वाक्य होते हैं- 1-विधान वाचक वाक्य, 2- निषेधवाचक वाक्य, 3- प्रश्नवाचक वाक्य, 4- विस्म्यादिवाचक वाक्य, 5- आज्ञावाचक वाक्य, 6- इच्छावाचक वाक्य, 7-संकेतवाचक वाक्य, 8-संदेहवाचक वाक्य।

विधानवाचक वाक्य - वह वाक्य जिससे किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है, वह विधानवाचक वाक्य कहलाता है। उदाहरण -

1. भारत एक देश है।
2. राम के पिता का नाम दशरथ था।

3. दशरथ अयोध्या के राजा थे।

निषेधवाचक वाक्य–जिन वाक्यों से कार्य न होने का भाव प्रकट होता है, उन्हें निषेधवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–

मैंने दूध नहीं पिया।

मैंने खाना नहीं खाया।

प्रश्नवाचक वाक्य – वह वाक्य जिसके द्वारा किसी प्रकार प्रश्न किया जाता है, वह प्रश्नवाचक वाक्य कहलाता है। उदाहरण –

भारत क्या है?

राम के पिता कौन थे?

दशरथ कहाँ के राजा थे?

आज्ञावाचक वाक्य– वह वाक्य जिसके द्वारा किसी प्रकार की आज्ञा दी जाती है या प्रार्थना किया जाता है, वह विधिसूचक वाक्य कहलाता हैं। उदाहरण–

बैठो।

बैठिये।

कृपया बैठ जाइये।

शांत रहो।

कृपया शांति बनाये रखें।

विस्मयादिबोधक वाक्य– वह वाक्य जिससे किसी प्रकार की गहरी अनुभूति का प्रदर्शन किया जाता है, वह विस्मयादिबोधक वाक्य कहलाता हैं। उदाहरण –

अहा! कितना सुन्दर उपवन है।

ओह! कितनी ठंडी रात है।

बल्ले! हम जीत गये।

इच्छावाचक वाक्य– जिन वाक्यों में किसी इच्छा, आकांक्षा या आशीर्वाद का बोध होता है, उन्हें इच्छावाचक वाक्य कहते हैं। उदाहरण– भगवान तुम्हे दीर्घायु करे। नववर्ष मंगलमय हो।

संकेतवाचक वाक्य– जिन वाक्यों में किसी संकेत का बोध होता है, उन्हें संकेतवाचक वाक्य कहते हैं। उदाहरण–

राम का मकान उधर है।

सोनु उधर रहता है।

संदेहवाचक वाक्य- जिन वाक्यों में संदेह का बोध होता है, उन्हें संदेहवाचक वाक्य कहते हैं। उदाहरण-

क्या वह यहाँ आ गया ?

क्या उसने काम कर लिया ?

रचना के आधार पर वाक्य के भेद=

रचना के आधार पर वाक्य के निम्नलिखित तीन भेद होते हैं-

(1)सरल वाक्य एक ही विधेय होता है, उन्हें सरल वाक्य या साधारण वाक्य कहते हैं, इन वाक्यों में एक ही क्रिया होती है, जैसे- मुकेश पढ़ता है। राकेश ने भोजन किया।

(2) **संयुक्त वाक्य** - जिन वाक्यों में दो-या दो से अधिक सरल वाक्य समुच्चयबोधक अव्ययों से जुड़े हों, उन्हें संयुक्त वाक्य कहते है, जैसे- वह सुबह गया और शाम को लौट आया। प्रिय बोलो पर असत्य नहीं।

इस वाक्य के चार प्रकार होते हैं :- 1.संयोजक संयुक्त वाक्य 2.विभाजक संयुक्त वाक्य 3.विरोधसूचक संयुक्त वाक्य 4.परिमाणवाचक संयुक्त वाक्य

(3) **मिश्रित/मिश्र वाक्य** - जिन वाक्यों में एक मुख्य या प्रधान वाक्य हो और अन्य आश्रित उपवाक्य हों, उन्हें मिश्रित वाक्य कहते हैं। इनमें एक मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय के अलावा एक से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं, जैसे - ज्यों ही उसने दवा पी, वह सो गया। यदि परिश्रम करोगे तो, उत्तीर्ण हो जाओगे। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे अक्षर अच्छे नहीं बनते हैं।

5

भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान के अध्ययेता 'भाषा विज्ञानी' कहलाते हैं। भाषा विज्ञान संभंधित आरंभिक गतिविधियों में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' का प्रमुख रूप से उल्लेख किया जाता है। भाषा विज्ञान, व्याकरण से भिन्न है। व्याकरण में किसी भाषा का कार्यात्मक अध्ययन किया जाता है, जबकि भाषा विज्ञानी इसके आगे जाकर भाषा का अत्यन्त व्यापक अध्ययन करता है। अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

भाषा विज्ञान का इतिहास

प्राचीन एवं मध्यकाल

भारत की तुलना में यूरोप में भाषा विषयक अध्ययन बहुत देर से प्रारंभ हुआ और उसमें वह पूर्णता और गंभीरता न थी, जो हमारे शिक्षाग्रंथों, प्रातिशाख्यों और पाणिनीय व्याकरण में थी। पश्चिमी दुनिया के लिये भाषा विषयक प्राचीनतम उल्लेख ओल्ड टेस्टामेंट में बुक ऑव जेनिसिस के दूसरे अध्याय में पशुओं के नामकरण के संबंध में मिलता है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (पाँचवी शताब्दी ई. पू.) ने मिस्र के राजा संमेतिकॉस द्वारा संसार की भाषा ज्ञात

करने के लिये दो नवजात शिशुओं पर प्रयोग करने का उल्लेख किया है। यूनान में प्राचीनतम भाषा वैज्ञानिक विवेचन प्लेटो (425-348 47 ई. पू.) के संवाद में मिलता है और यह मुख्यतया ऊहापोहात्मक है। अरस्तू (384-322,21 ई. पू.) पाश्चात्य भाषा विज्ञान के पिता कहे जाते हैं। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति और प्रकृति के संबंध में अपने गुरु प्लेटो से कुछ विरोधी विचार व्यक्त किए। उनके अनुसार भाषा समझौते और परंपरा का परिणाम है। अर्था उन्होंने भाषा को यादृच्छिक कहा है। अरस्तू का यह मत आज भी सर्वमान्य है। गाय को 'गाय' इसलिये नहीं कहा जाता है कि इस शब्द से इस विशेष चौपाए जानवर का बोध होना अनिवार्य है, किंतु इसलिये कहा जाता है कि कभी उक्त पशु का बोध कराने के लिये इस शबद का यादृच्छिक प्रयोग कर लिया गया था, जिसे मान्यता मिल गई और जो परंपरा से चला आ रहा है उन्होंने 'संज्ञा', 'क्रिया', 'निपात' ये शब्द भेद किए।

यूनान में भाषा का अध्ययन केवल दार्शनिकों तक ही सीमित रहा। यूनानियों की दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं में कोई रुचि नहीं दिखाई। यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि सिकंदर की सेनाओं ने यूनान से लेकर भारत की उत्तरी सीमा तक के विस्तृत प्रदेश को पदाक्रांत किया, किंतु उनके विवरणों में उन प्रदेशों की बोलियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। यूनान में कुछ भाषा विषयक कार्य भी हुए अरिस्तार्कस ने होमर की कविता की भाषा का विश्लेषण किया। अपोलोनिअस डिस्कोलस ग्रीक वाक्यप्रक्रिया पर प्रकाश डाला। डिओनिसओस थ्रौक्स ने एक प्रभावशाली व्याकरण लिखा। कुछ शब्दकोश ऐसे भी मिलते है, जिनमें ग्रीक और लैटिन के अतिरिक्त एशिया माइनर में बोली जाने वाली भाषाओं के अनेक शब्दों का समावेश किया गया है। संक्षेप में यूनानियों ने भाषा को तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से परखा। उनके द्वारा प्रस्तुत भाषाविश्लेषण को दार्शनिक व्याकरण की संज्ञा दी गई है। रोम वालों ने यूनानियों के अनुकरण पर व्याकरण और कोश बनाए। वारो (116-27 ई. पू.) ने 26 खंडों में लैटिन व्याकरण रचा। प्रिस्किअन (512-60) का 20 खंडोवाला लैटिन व्याकरण बहुत प्रसिद्ध है।

मध्य युग

मध्य युग में ईसाई मिशनरियों को औरों की भाषाएँ सीखनी पड़ी। जनता को जनता की भाषा में उपदेश देना प्रचार के लिये अनिवार्य था। फलस्वरूप

परभाषा सीखने की व्यावहारिक पद्धतियाँ निकलीं। मिशनरियों ने अनेक भाषाओं के व्याकरण तथा कोश बनाए। पर ग्रीक लैटिन व्याकरण के ढाँचों में रचे जाने के कारण ये अपूर्ण तथा उनुपयुक्त थे। उसी युग में सैनिकों और उपनिवेशों ने शासकीय वर्ग के लोगों ने स्थानीय भाषाओं का विश्लेषण शुरू किया। साथ ही व्यापार विस्तार के कारण अनेकानेक भाषाओं से यूरोपीयों का परिचय बढ़ा। 17वीं शताब्दी में (1647 में) फैंसिस लोडविक तथा रेवरेंड केव डेक जैसे विद्वानों ने 'ए कॉमन राइटिंग' तथा 'यूनिवर्सल कैरेक्टर' जैसे ग्रंथ लिखे थे, जिससे उनके स्वन विज्ञान के ज्ञान का परिचय मिलता है। लोडविक ने एक आशुलिपि का अविष्कार किया था, जो अंग्रेजी और डच दोनों के लिये 1650 ई. के लगभग व्यवहृत की गई थी। मध्यकाल में सभी ज्ञात भाषाओं के सर्वेक्षण का प्रयत्न हुआ। अतएव अनेक बहुभाषी कोश तथा बहुभाषी संग्रह निकले। 18वीं शताब्दी में पल्लास की विश्वभाषाओं की तुलनात्मक शब्दावली में 285 शब्द ऐसे हैं, जो 272 भाषाओं में मिलते हैं। एडेलुंग की माइथ्रोडेटीज में 500 भाषाओं में 'ईश प्रार्थना' है।

18वीं एवं 19वीं शती

इस प्रकार 18वीं शती के पूर्व भाषा विषयक प्रचुर सामग्री एकत्र हो चुकी थी। किंतु विश्लेषण तथा प्रस्तुतीकरण क पद्धतियाँ वही पुरानी थीं। इनमें सर्वप्रथम जर्मन विद्वान् लाइबनित्स ने परिष्कार किया। इन्होंने ही संभवतः सर्वप्रथम यह बताया कि 'यूरेशियाई' भाषाओं का एक ही प्रागैतिहासिक उत्स है। इस प्रकार 18वीं शती में तुलात्मक ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की भूमिका बनी, जो 19वीं शती में जाकर विकसित हुई। संक्षेप में, 19वीं शताब्दी से पूर्व यूरोपीय भाषाओं का जो अध्ययन किया गया, वह भाषा वैज्ञानिक की अपेक्षा तार्किक अधिक, रूपात्मक की अपेक्षा संकल्पनात्मक अधिक और वर्णनात्मक की अपेक्षा विध्यात्मा अधिक था। 19वीं शती (ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान) – उन्नीसवीं शती ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान का युग था इसके प्रारंभ का श्रेय संस्कृत भाषा से पाश्चात्यों के परिचय को है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान का सूत्रपात एक प्रकार से उस समय हुआ जब 2 फरवरी, 1786 को सर विलियम जोंस ने कलकत्ते में यह घोषणा की कि संस्कृत भाषा की संरचना अद्‌भुत है, वह ग्रीक से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध और दोनों से ही अधिक परिष्कृत है। फिर भी इसका दोनों से घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने देखा कि संस्कृत

की एक ओर ग्रीक और लैटिन तथा दूसरी और गॉथीक, केल्टी से इतनी अधिक समानता है कि निश्चय ही इन सब का एक ही स्रोत रहा होगा। यह पारिवारिक धारणा इस नए विज्ञान के मूल में है।

इस दिशा में पहला सुव्यवस्थित कार्य डेनमार्क वासी रास्क (1787-1832) का है। रास्क ने भाषाओं की समग्र संरचना की तुलना पर अधिक बल दिया और केवल शब्दावली साम्य आगत शब्दों के कारण भी हो सकता है। इन्होंने स्वनों के साम्य को भी पारिवारिक संबंध निर्धारण का महत्वपूर्ण अंग माना। इस धारणा को सुव्यवस्थित पुष्टि दी याकोव ग्रीम (1785-1863) ने, जिनके स्वन नियम भाषा विज्ञान में प्रसिद्ध हैं। इन स्वन नियमों में भारत यूरोपीय से प्राग्जर्मनीय में, तदनंतर उच्चजर्मनीय में होने वाले व्यवस्थित व्यंजन स्वन परिवर्तनों की व्याख्या है। इसी बीच संस्कृत के अधिकाधिक परिचय से पारिवारिक तुलना का क्रम अधिकाधिक गहरा होता गया। बॉप (1791-1967) ने संस्कृत, अवेस्ता ग्रीक, लैटिन, लिथुएनी, गॉथिक, जर्मन, प्राचीन स्लाव केल्टी और अल्बानी भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण प्रकाशित किया। रास्क और ग्रिम ने स्वन परिवर्तनों पर प्रकाश डाला, बॉप ने मुख्यत: रूपप्रक्रिया का आधार ग्रहण किया।

रास्क, ग्रिम और बॉप के पश्चात् मैक्समूलर (1823-1900) और श्लाइखर (1823-68) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मैक्समूलर की महत्वपूर्ण कृति 'लेसंस इन दि सायंस ऑव लैंग्वेज' (1861) है। श्लाइखर ने भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं का एक सुव्यवस्थित सर्वांगीण तुलनात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया। श्लाइखर ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष पर भी विशेष कार्य किया। इनके अनुसार यदि दो भाषाओं में समान परिवर्तन पाए जाते हैं, तो ये दोनों भाषाएँ किसी काल में एक साथ रही होंगी। इस प्रकार उन्होंने तुलनात्मक आधार पर आदिभाषा की पुनर्रचना के लिये मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्रचना के अतिरिक्त भाषा विज्ञान को इनकी एक और मुख्य देन भाषाओं का प्ररूपसूचक वर्गीकरण है। इन दिनों भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आने वाली अमेरिकी विद्वानों में हिवटनी (1827-1894) अग्रणी हैं। इन्होंने भाषा के विकास और भाषा के अध्ययन पर पुस्तकें लिखीं। 1876 में प्रकाशित इनक संस्कृत व्याकरण अपने क्षेत्र का अद्वितीय ग्रंथ है। श्लाइखर के तुरंत बाद फिक (1833-1916) ने 1868 में सर्वप्रथम भारत-यूरोपीय भाषाओं का तुलतात्मक शब्दकोश प्रकाशित किया, जिसमें आदि भाषा के पुनर्रचित रूप भी दिए गए थे।

कुछ समय बाद विद्वानों का ध्यान ग्रिम नियम की कुछ अंसगतियों पर गया। डेनमार्क वासी वार्नर ने 1875 में एक ऐसी असंगति को नियमबद्ध अपवाद के रूप में स्थापित किया। यह असंगति थी भारत-यूरोपीय प्, त्, क् का जर्मनीय में सघोष बन जाना। वार्नर ने ग्रीक और संस्कृत की तुलना से इसका अपवाद ढूँढ़ निकाला जो वार्नर नियम के नाम से प्रचलित है। ऐसे अपवादों की स्थापना से विद्वानों के एक संप्रदाय को उनके अपने विश्वासों में पुष्टि मिली। ये नव्य वॅयाकरण कहलाते हैं। इनके मत से स्वन नियमों का कोई अपवाद नहीं होता। स्वन परिवर्तन आकस्मिक और अव्यवस्थित नहीं है, प्रत्युत नियत और सुव्यवस्थित हैं। असंगति इस कारण मिलती है कि हम उनकी प्रक्रिया को पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं, क्योकि भाषा के नमूनों की कमी है। कुछ असंगतियों के मूल में सादृश्य है, जिसकी पूर्वाचार्यो ने उपेक्षा की थी। इस प्रकार ये नव्य वैयाकरण बड़े व्यवस्थावादी थे।

20वीं शती

ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान पर 20वीं सदी में भी कार्य हुआ है। भारत यूरोपीय परिवार पर ब्रूगमैन और डेलब्रूक एवं हर्मन हर्ट के तुलनात्मक व्याकरण महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। मेइए का भारत-यूरोपीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की भूमिका नामक ग्रंथ सनातन महत्व का कहा जा सकता है। हिटाइट नामक प्राचीन भाषा का पता लगने के बाद भारत-यूरोपीय भाषा विज्ञान पर नये सिरे से कार्य प्रारंभ हुआ। भारत यूरोपीयेतर परिवारों पर ऐतिहासिक तुलनात्मक कार्य हो रहा है। ग्रीनबर्ग का अफ्रीकी भाषाओं का वर्गीकरण अनुकरणीय है। इसकी अधुनातन शाखा भाषा कालक्रम विज्ञान है, जिसके अंतर्गत तुलनात्मक पद्धति से उस समय के निरूपण का प्रयास किया जाता है, जब किसी भाषा परिवार के दो सदस्य पृथक्-पृथक् हुए थे। अमेरिकी मानव विज्ञानी मॉरिस स्वेडिश इस प्रक्रिया के जन्मदाता हैं। यह पद्धति रेडियो रसायन द्वारा ली गई है।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान

बीसवीं शती का भाषा विज्ञान मुख्यत: वर्णनात्मक अथवा संरचनात्मक भाषा विज्ञान कहा जा सकता है। इसे आधुनिक रूप देने वालों में प्रमुख बॉदें, हेनरी स्वीट और सोसुर हैं। स्विस भाषा वैज्ञानिक सोसुर (1857-1913) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों से भी पूर्व हंबोल्ट ने प्रतिपादित किया था कि भाषा विशेष

का अध्ययन किसी अन्य भाषा से तुलना किए बिना उसी भाषा के आंतरिक अवयवों के आधार पर होना चाहिए। सोसुर ने सर्वप्रथम भाषा की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए संकेतित और संकेतन के संबंध को वस्तु न मानकर प्रकार्य माना और उसे भाषाई चिह्न से अभिहित किया। चिह्न यादृच्छिक है अर्थात् 'संकेतित' का 'संकेतक' से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है। वृक्ष के लिये 'पेड़' कहने में कोई तर्क नहीं है, 'प', 'ए', 'ड', 'स्वनों कुछ ऐसा नहीं कि वह वृक्ष का ही संकेतक हो, यह केवल परंपरा के कारण है। इसके अतिरिक्त चिह्न का मूल्य भाषा में प्रयुक्त पूरी शब्दावली (अन्य सभी चिह्नों) के परिप्रेक्ष्य में होता है, अर्थात्श् उनके विरोध से होता है। भाषा का इन्हीं विरोधों की प्रकार्यता पर निर्भर रहना वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का आधारस्तंभ है। इन (स्वनिम, रूपिम, अर्थिम आदि) की सत्ता विरोध के सिद्धांत पर ही आश्रित है।

सोसूर ने भाषा के दो प्रयोगों पैरोल (वाक) और लांग (भाषा) में भी भेद किया। प्रथम भाषा का जीवित रूप है, हमारा भाषणउच्चार पैरोल है। किंतु द्वितीय भावानयन की प्रक्रिया से उद्भूत एक अमूर्त भावना है। आपकी हिंदी, हमारी हिंदी, सभी की हिंदी व्यक्तिगत स्तर पर उच्चारण शब्द प्रयोगादि भेद से भिन्न है– फिर भी हिंदी भाषा जैसी अमूर्त धारणा लांग है, जो भावानयन प्रक्रिया का परिणाम है और जो इन अनेक वैयक्तिक भेदों स परे और सामान्यकृत हैं। यह साकालिक है है। सोसुर का महत्व संरचनत्मक भाषा विज्ञान में क्रांतिकारी माना जा सकता है। परकालीन यूरोप के अनेक स्कूल कोपेनहेगेन, प्राहा (प्राग) लंदन तथा अमेरिका के भाषा वैज्ञानिक संप्रदाय इनके कुछ मूल सिद्धांतों को लेकर विकसित हुए हैं।

प्राहा स्कूल

यूरोप में सोसुर की प्रेरणा से विकसित एक संप्रदाय प्राह स्कूल के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रवर्तक रूसी विद्वान् त्रुबेजकोय (Trubetzkoy, 1890–1938) थे। इस समय इसके मुख्य प्रचारक रोमन यॉकोबसन हैं। इस स्कूल की सिद्धांत प्रदर्शिका पुस्तक त्रबेजकोआ लिखित, 1936 स्वनप्रक्रिया के सिद्धांत है इस स्कूल में स्वनप्रक्रिया पर विशेष बल दिया जाता है। इनके यहाँ यह शब्द एक विशेष विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके अंतर्गत भाषण स्वनों के प्रकार्य का सर्वांगीण अध्ययन आ जाता है, और इसी कारण ये लोग प्रकार्यवादी कहलाते हैं। इस संप्रदाय की महत्ता भाषा संरचना की निर्धारक पद्धति में है, जिसमें विचार

किया जाता है स्वन इकाइयाँ विशिष्ट भाषा संबंधी व्यवस्थाओं में किस प्रकार संघटित होती है। यह पद्धति विरोध पर आश्रित है। स्वनात्मक अंतर जब अर्थात्मक अंतर को भी प्रकट करते हैं, विरोधात्मक अर्थात् स्वनिमात्मक माने जाते हैं। उदाहरण के लिये हिंदी काल और गाल शब्दों को लें। इनमें स्वनात्मक अंतर स्वनिमात्मक है। परिणामस्वरूप 'क' और 'ग' दो पृथक् पृथक् स्वनिम हैं। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि क और ग स्वत: स्वनिम नहीं है, ये स्वनिम केवल इस कारण हैं कि अर्थ के अनुसार ये विरोधात्मक हैं। स्वन स्वत: स्वनिम को निर्धारित नहीं करते स्वनिमत्व की निर्धारक है इन स्वनों की विरोधात्मक प्रकार्यता। इस प्रकार, स्वनिम 'क, ग' (क ग) स्वनों केश् समान वास्तविक नहीं है। ये केवल अमूर्त भाव या विरोधात्मक प्रकार्यों के योग हैं। यह विरोध इस संप्रदाय में बड़े विस्तार के साथ वर्णित हुआ है। इसके अनेक प्रतिरूप युग्म, जैसे– द्विपार्श्विक, बहुपार्श्विक आनुपातिक, विलगति आदि परिभाषित किए गए हैं। निवैषम्यीकरण, आर्कीस्वनिम, सहसंबध, आदि टेकनिकल शब्द इसी स्कूल के हैं। फ्रांस के आंद्रे मार्तिने ने इस विरोध की महत्ता का ऐतिहासिक स्वनविकास में भी प्रयोग किया और कालक्रमिक स्वनप्रक्रिया की नींव डाली। कालक्रम से उत्पन्न अनेक स्वनपरिवर्तन भाषा की स्वनसंघटना में भी अंतर उपस्थित करते हैं। ये प्रकार्यात्मक परिवर्तन कहलाते हैं। ये प्रकार्यात्मक परिवर्तन भी व्यवस्था से आते हैं और सामंजस्य अथवा लाघव की दिशा में होते हैं। इस प्रकार प्राहा स्कूल ऐतिहासिक विकासों की भी तर्कसंगत व्याख्या में सफल हुआ है।

कोपेनहेगेन स्कूल

इन्हीं दिनों यूरोप में एक अन्य संप्रदाय चल निकला। यह 'कोपेनहेगेन स्कूल', 'डेनिश स्कूल', अथवा 'ग्लासेमेटिक्स' कै नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रर्वतक ह्येल्मस्लेव (सन् 1899) हैं और इनकी सिद्धांत दर्शिका है, 1943 अंग्रेजी अनुवाद ह्विटफील्ड द्वारा Prolegomena to a Theory of Language, 1953। यह संप्रदाय अधिकतर सिद्धांतों के विवेचन में सीमित रहा, पर अभी इन सिद्धांतों का भाषा विशेष पर प्रयोग अत्यल्प मात्र में हुआ है इस संप्रदाय की महत्ता इसमें है कि यह शुद्ध रूपवादी है। भाषा को यह भी सोसुर की भाँति मूल्यों की व्यवस्था मानता है, किंतु भाषा विश्लेषण में भाबेतर तत्त्वों का तथा भाषा विज्ञानेतर विज्ञानों का, जैसे भौतिकी, शरीर प्रक्रिया विज्ञान, समाजशास्त्र आदि का आश्रय नहीं लेना चाहता। विश्लेषण पद्धति शुद्ध भाषा परक होनी चाहिए स्वयं

में समर्थ और स्वयं में पूर्ण। इस संप्रदाय में अभिव्यक्ति और आशय प्रत्येक के दो-दो भेद किए गए रूप और सार भाषेतर तत्त्व है। रूप शुद्ध भाषापरक तत्त्व है, जो सार तत्त्वों की संघटना व्यवस्था के रूप में है। इस प्रकार अभिव्यक्ति बनती है, और अभिव्यक्ति के रूप में संरचना व्यवस्था, जैसे– स्वनिम, रूपिम आदि है। इसी प्रकार आशय के सार के अंतर्गत शब्दार्थ हैं और रूप में अर्थसंघटना है

लंदन स्कूल

हेनरी स्वीट इसके आधारस्तंभ कहे जा सकते हैं। इसका विशेष परिवर्धन लंदन विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान तथा स्वन विज्ञान के विद्वान् प्रोफेसर फर्थ द्वारा हुआ है। यह स्कूल अर्थ को भी मान्यता देता है। इसके अनुसार भाषा एक सार्थक क्रिया है और अर्थप्रसंग के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। इस स्कूल में ध्वन्यात्मक विवेचन के साथ ही साथ रागात्मक तत्त्वों की चर्चा होती है। रागात्मक विश्लेषण अमेरिकी स्वनिम वैज्ञानिक विश्लेषण से भिन्न है और इसका क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत है। रागात्मक विश्लेषण बहुव्यवस्थाजनित है, जब कि स्वनिम विज्ञान एक व्यवस्थाजनित है। फर्थ ने जिस रागात्मक स्वनप्रक्रिया का प्रवर्तन किया उसे आगे बढ़ाने वालों में मुख्य हें रॉबिंस, लायंस, हेलिडे और डिक्शन। जहाँ तक स्वन विज्ञान का संबंध है, लंदन स्कूल के अंतर्गत स्वीट के बाद डेनियल जोन्स का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अमेरिकी स्कूल

यद्यपि 'प्राहास्कूल' और 'कोपेनहेगन स्कूल' जैसे शब्दों के वजन पर अमेरिकी स्कूल नामकरण उचित नहीं होगा, क्योंकि यहाँ केवल एक पद्धति पर काम नहीं हुआय फिर भी सुविधा के लिये अमेरिकी स्कूल कहा गया है। अमेरिका में संरचनात्मक भाषा विज्ञान के प्रवर्तकों में बोआज (1858-1942), सैपीर (1884-1939) तथा ब्लूमफील्ड (1887-1949) के नाम आते हैं। इनमें पहले दो मूलत: मानव विज्ञानी थे तथा भाषा विश्लेषण उनके लिये व्यावहारिक आवश्यकता थी। उन्होंने अमेरिकी जंगली जातियों की भाषाओं के वर्णन का प्रयास किया है। ब्लूमफील्ड निस्संदेह ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे और जर्मनीय भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। ब्लूमफील्ड अमेरिकी भाषा विज्ञान के प्रेरणास्रोत रहे हैं अैर आप की पुस्तक

भाषा (लैंग्वेज) बड़े आदर के साथ पढ़ी-पढ़ाई जाती है। ब्लूमफील्ड की महत्ता इसमें है कि इन्होंने भाषा विज्ञान को विज्ञान की कोटि में स्थापित किया और व्याकरण तथा भाषाई विवेचन को सही अर्थो में विज्ञान का रूप दिया। इनका आग्रह रहा है कि भाषा का विश्लेषण वर्गीकरण तथा प्रस्तुतीकरण वैज्ञानिक रीति से होना चाहिए। अर्थ का भाषा विश्लेषण से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। मनोविज्ञान दर्शन आदि का आश्रय नहीं लेना चाहिए, न अटकलें लगानी चाहिए और न शिथिल अस्पष्ट शब्दावली में तथ्यों को प्रकट करना चाहिए। स्वन नियमों की अटूटता में इनका विश्वास था। किंतु ब्लूमफील्ड ने विश्लेषण पद्धति पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला। यह कमी उनकी अगली पीढ़ी के विद्वानों ने पूरी की। पाइक ने 'स्वनि विज्ञान' में और नाइडा ने रूप प्रक्रिया में विश्लेषण पद्धति का विस्तार विवेचन किया है। पाइक ने टैग्मेमिक पद्धति निकाली जो कि रूप प्रक्रिया और वाक्य प्रक्रिया दोनों में एक समान प्रयुक्त होने से स्पृहणीय हो गई है।

इस पद्धति पर अनेकानेक भाषाओं के विश्लेषण और विवरण प्रस्तुत किए गए हैं और सर्वत्र यह सफल रही है। इन्हीं के समकालीन जैलिग हैरिस ने भी संरचनात्मक पद्धति पर अपनी पुस्तक लिखी। इसी समय वेल्स ने अव्यवहित अवयव की पद्धति से वाक्यों का विश्लेषण करना शुरू किया, जिसे अनेक भाषाविदों ने अपनाया। फिर हैरिस के शिष्य चौमस्की ने एक नितांत गणितीय एवं तर्कसंगत पद्धति निकाली। यह है रूपांतरण-जनन पद्धति यह अधुनातन पद्धति है और भाषा वैज्ञानिकों को सर्वाधिक प्रिय हो चली है। अब हैरिस ने अव्यवहित अवयव पद्धति और रूपांतरण विश्लेषण पद्धति की कमियों को देखते हुए सूत्र अवयव विश्लेषण पद्धति और रूपांतरण पद्धति के बीच का रास्ता है। यह प्रत्येक वाक्य में से एक 'मौलिक वाक्य' पृथक् कर देती है अव्यवहित अवयव विश्लेषण पद्धति में इस तरह 'मौलिक वाक्य' का पृथक्करण नहीं होता जब कि रूपांतरण विश्लेषण पद्धति में पूरे वाक्य को अलग अलग 'मौलिक वाक्यों' और उनके 'अनुलग्नक शब्दों' में पृथक् कर दिया जाता है। स्वनिमिक, रूपिमिक और वाक्य स्तर पर भाषा का विश्लेषण प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य जितना पुस्तकें लिखकर किया गया है, उससे कहीं अधिक भाषा विज्ञान ने संबंधित अमेरिकी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से हुआ है। इनके लेखकों में से कुछ हैं,—ब्लॉक, हैरिस, हॉकेट, स्मिथ, ट्रेगर, वेल्स आदि।

भौगोलिक भाषा विज्ञान

भौगोलिक भाषा विज्ञान इस विषय के अंतर्गत भाषा भूगोल भाषिका (बोली) विज्ञान का अध्ययन आता है। किसी एक उल्लिखित क्षेत्र में पाई जाने वाली भाषा संबंधी विशेषताओं का व्यवस्थित अध्ययन भाषा भूगोल या बोली भूगोल के अंतर्गत आता है। ये विशेषताएँ अच्चारणगत, शब्दालीगत या व्याकरणगत हो सकती है। सामग्री एकत्र करने के लिये भाषा विज्ञानी आवश्यकतानुसार सूचक चुनता है और टेपरिकार्डर पर या विशिष्ट स्वनात्मक लिपि में नोटबुक पर सामग्री एकत्र करता है। इस सामग्री के संकलन और संपादन के बाद वह उन्हें अलग अलग मानचित्रों पर अंकित करता है। इस प्रकार तुलनात्मक आधार पर वह समभाषांश रेखाओं द्वारा क्षेत्रीय अंतर स्पष्ट कर भाषागत या बोलीगत भौगोलिक सीमाएँ स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार बोलियों का निर्धारण हो जाने पर प्रत्येक का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक सर्वेक्षण किया जाता है। उनके व्याकरण तथा कोश बनाए जाते हैं। बोलियों के इसी सर्वांगीण वर्णनात्मक तुलनात्मक या ऐतिहासिक अध्ययन को भाषिका (बोली) विज्ञान कहते हैं।

भाषा भूगोल का अध्ययन 19 वीं शताब्दी में शुरू हुआ। इस क्षेत्र में प्रथम उल्लेखनीय नाम श्लेमर का है, जिन्होंने बवेरियन बोली का अध्ययन प्रस्तुत किया। 19वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी यूरोप में भाषा भूगोल का कार्य व्यापक रूप से हुआ। इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं, जर्मनी का और फ्रांस का जर्मनी में जार्ज बैंकर आका हरौर रीड का कार्य तथा फ्रांस में गिलेरी और एडमंट का कार्य महत्वपूर्ण है। लगभग इसी समय 'इंग्लिश डायलेक्ट सोसायटी' ने भी कार्य शुरू किया, जिसके प्रणेता स्वीट थे। सन् 1889 से अमेरिका में बोली कोश या भाषा एटलस के लिये सामग्री एकत्र करने के लिये अमेरिकन डायलेक्ट सोसायटी की स्थापना हुई। व्यवस्थित कार्य मिशिगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. हंस कुरेथ केश् नेतृत्व में सन् 1928 में शुरू हुआ। अमेरिका के ब्राउन विश्वविद्यालय और अमेरिकन कौंसिल ऑव लर्नेड सोसायटीज ने उनके 'लिंग्विस्टिक एटलस ऑव न्यू इंग्लैंड' को छह जिलें में प्रकाशित किया है (1936–43)। उन्हीं के निदेशन में एटलस ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स ऐंड कैनाडा जैसा बृहत् कार्य संपन्न हुआ।

मानव विज्ञानाश्रित भाषा विज्ञान

मानव विज्ञानाश्रित भाषा विज्ञान जब से मानव वैज्ञानिक अध्ययन में भाषा विज्ञान और भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण में मानव विज्ञान की सहायता ली जाने

लगी है, मानवविज्ञानश्रित भाषा विज्ञान को एक विशिष्ट कोटि का अध्ययन माना जाने लगा है। इसमें ऐसी भाषाओं का अध्ययन किया जाता है, जिनका अपना कोई लिखित रूप न हो और न उनपर पहले विद्वानों ने कार्य ही किया हो। अर्थात् ज्ञात संस्कृति से अछूत आदिम जातियों की भाषाओं का वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन इस कोटि के अंतर्गत आता है। इसका एक रूप मानवजाति भाषा विज्ञान कहलाता है। अलबर्ट गलेशन (Albert Gallation 1761–1840) ने भाषा आधार पर अमेरिकी वर्गों का विभाजन किया। जे. डब्ल्यू पावेल (1843–1902) और डी0 जी0 ब्रिंटन (1837–1890) ने अमेरिकी इंडियनों की भाषा का अध्ययन किया। हबोल्ट (1767–1835) के अध्ययन के बाद 19वीं शताब्दी के मध्य में मानव जाति–विज्ञान और भाषा विज्ञान में घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ और तदनंतर इस क्षेत्र में अधिकाधिक कार्य होने लगा। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सपीर का है, जो (1916) के नाम से सामने आया। वूर्फ होपी ने बौली पर कार्य किया है। ब्लूफील्ड ने केंद्रीय एल्गोंकियन, सी. मीनॉफ ने (बांटू और ओ. डैम्पोल्फ) ने मलाया पोलेनीशियम क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया। ली (स्मम) का विंटो पर और हैरी का नाहोवो पर किया गया कार्य भाषा और संस्कृति के पारस्परिक संबंध पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इस प्रकार अमेरिकी स्कूल के भाषा वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में बड़ा कार्य किया है। अमेरिका से ही नामक पत्रिका निकलती है, जिसमें इस क्षेत्र में होने वाला अनुसंधानकार्य प्रकाशित होता रहता है।

भाषा विज्ञान का प्रयोगात्मक पक्ष

विज्ञान की अन्य शाखाओं के समान भाषा विज्ञान के भी प्रयोगात्मक पक्ष हैं, जिनके लिये प्रयोग की प्रणालियों और प्रयोगशाला की अपेक्षा होती है। भिन्न भिन्न यांत्रिक प्रयोगों के द्वारा उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान, भौतिक स्वन विज्ञान और श्रवणात्मक स्वन विज्ञान का अध्ययन किया जाता है। इसे प्रायोगिक स्वन विज्ञान, यांत्रिक स्वन विज्ञान या प्रयोगशाला स्वन विज्ञान भी कहते हैं। इसमें दर्पण जैसे सामान्य उपकरण से लेकर जटिलतम वैद्युत उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। परिणामस्वरूप भाषा विज्ञान के क्षेत्र में गणितज्ञों, भौतिक शास्त्रियों और इंजीनियरों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित हो गया है। कृत्रिम तालु और कृत्रिम तालु प्रोजेक्टर की सहायता से व्यक्तिविशेष के द्वारा उच्चारित स्वनों के उच्चारण स्थान की परीक्षा की जाती है। कायमोग्राफ स्वानों का घोषणत्व और प्राणत्व निर्धारण

करने अनुनासिकता और कालमात्र जानने के लिये उपयोगी है। लैरिंगो स्कोप से स्वरयंत्र (काकल) की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। एंडोस्कोप लैरिंगोस्कोप का ही सुधरा रूप है। ऑसिलोग्राफ की तरंगें स्वनों के भौतिक स्वरूप को पर्दे पर या फिल्म पर अत्यंत स्पष्टता से अंकित कर देती है। यही काम स्पेक्टोग्राफ या सोनोग्राफ द्वारा अधिक सफलता से किया जाता है। स्पेक्टोग्राफ जो चित्र प्रस्तुत करता है उन्हें पैटर्न प्लेबैक द्वारा फिर से सुना जा सकता है। स्पीचस्ट्रेचर की सहायता से रिकार्ड की हुई सामग्री को धीमी गति से सुना जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे बड़े यंत्र हैं, जिनसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में पर्याप्त सहायता ली जा रही है।

फ्रांसीसी भाषा वैज्ञानिकों में रूइयो ने स्वन विज्ञान के प्रयोगों के विषय में ग्रंथ लिखा था। लंदन में प्रो. फर्थ ने विशेष तालुयंत्र का विकास किया। स्वरों के मापन के लिये जैसे स्वरत्रिकोण या चतुष्कोण की रेखाएँ निर्धारित की गई हैं, वैसे ही इन्होंने व्यंजनों के मापन के लिये आधार रेखाओं का निरूपण किया, जिनके द्वारा उच्चारण स्थानों का ठीक-ठीक वर्णन किया जा सकता है। डेनियल जांस और इडा वार्ड ने भी अंग्रेजी स्वन विज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषाओं के स्वन विज्ञान पर काम करने वालों में क्रमशः आर्मस्ट्राँग, बिथेल और बोयानस मुख्य हैं। सैद्धांतिक और प्रायोगिक स्वन विज्ञान पर समान रूप से काम करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित मुख्य हैं– स्टेटसन (मोटर फोनेटिक्स 1928), नेगस (द मैकेनिज्म ऑव दि लेरिंग्स,1919) पॉटर, ग्रीन और कॉप (विजिबुल स्पीच), मार्टिन जूस (अकूस्टिक फोनेटिक्स, 1948), हेफनर (जनरल फोनेटिक्स 1948), मौल (फंडामेंटल्स ऑव फोनेटिक्स, 1963) आदि।

इधर एक नया यांत्रिक प्रयास आरंभ हुआ है, जिसका संबंध शब्दावली, अर्थतत्त्व तथा व्याकरणिक रूपों से है। यांत्रिक अनुवाद के लिए वैद्युत कम्प्यूटरों का उपयोग वैज्ञानिक युग की एक विशेष देन है। यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का अत्यंत रोचक और उपादेय विषय है।

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान

जिस प्रकार सामान्य विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष अनुप्रयुक्त विज्ञान है, उसी प्रकार भाषा विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान है। भाषासंबंधी मौलिक नियमों के विचार की नींव पर ही अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान

की इमारत खड़ी होती है। संक्षेप में, इसका संबंध व्यावहारिक क्षेत्रों में भाषा विज्ञान के अध्ययन के उपयोग से है। इंग्लैंड में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के केंद्र लंदन विश्वविद्यालय और एडिनबरा विश्वविद्यालय है। भाषा विज्ञान का सर्वाधिक उपयोग भाषा शिक्षण के क्षेत्र में किया जा रहा है। भाषा देशी हो या विदेशी, स्वयं सीखनी हो या दूसरों को सिखानी हो, सभी कार्यो के लिये भाषा विज्ञान का ज्ञान उपयोगी होता है। इस भाषा शिक्षण के अंतर्गत वास्तविक शिक्षण पद्धति और पाठ्य पुस्तकों की रचना, दोनों ही सम्मिलित हैं। इस कार्य के लिये तुलनात्मक वर्णनात्मक-भाषा विज्ञान और शब्दावली-अध्ययन से भरपूर सहायता मिल सकती है। विदेशी छात्रों को अँग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं की शिक्षा देने के लिए इंग्लैड, अमेरिका, फ्रांस और रूस आदि देशों में व्यापक अनुसंधान कार्य हो रहा है। आशु लिपि की व्यवस्थित पद्धति के निर्माण में शब्दावली अध्ययन की बड़ी उपादेयता है। टाइपराइटर के की बोर्ड की क्रम-व्यवस्था में भी भाषा विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

वर्तमान युग

आज के युग में भाषा विज्ञान का महत्व इसलिये भी बढ़ रहा है कि उसका उपयोग भाषा शिक्षण के अतिरिक्त स्वचालित या यांत्रिक अनुवाद के क्षेत्र में भी बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो रहा है। एक भाषा के सूचनापरक तथा वैज्ञानिक साहित्य का दूसरी भाषा में मानव मस्तिष्क के अनुरूप ही इलेक्ट्रॉनिक कंप्यूटरों (परिकलन यंत्रों) की सहायता से अनुवाद कर देना दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक संभव होता जा रहा है इस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान अमेरिका और रूस में हो रहा है, जो भाषा वैज्ञानिकों और वैद्युत इंजीनियरों के परस्पर सहयोग का फल है। यांत्रिक अनुवाद का मूल विचार सन् 1946 में वारेन वीवर और ए. डी. बूथ के बीच स्वचालित अंक परिकलन यंत्र के विषय में परिचर्चा के समय उठा। बूथ और डौ. एच. बी. ब्रिटन ने 1947 में इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी, प्रिंस्टन में स्वचालित कंप्यूटर से कोश का अनुवाद करने के लिए, एक विस्तृत 'कोड' तैयार किया। 1948 में आर. एच. रिचनस ने कोरे शब्दानुवाद के साथ साथ ब्याकरणिक रूपों का यांत्रिक अनुवाद कर सकने की संभावना प्रकट की। अमेरिका में यांत्रिक अनुवाद पर महत्वपूर्ण कार्य जुलाई सन् 1946 में वारैन वीवर के अनुवाद नामक ज्ञापन के प्रकाशित होने पर शुरू हुआ। अनेक विश्व विद्यालयों और टेकनॉलॉजी संस्थानों ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। 1950

में रेफलर ने Studies in Mechanical Translation नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें अनुवाद पर पूर्व संपादन और अनुवादोत्तर संपादन का प्रस्ताव रखा। फिर यांत्रिक अनुवाद पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन होने लगे, पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं और रूसी से अंग्रेजी में अनुवाद होने लगे। इस विषय पर इंग्लैड, अमेरिका, जर्मनी और रूस में शोध कार्य चल रहा है। भाषा विज्ञान के परिचय में हम यह देखते हैं कि भाषा क्या है? भाषा का विकास कैसे हुआ? और समाज में भाषा का प्रयोग कैसे होता है? इन सारे प्रश्नों का उत्तर हमें भाषा विज्ञान में मिलता है। भाषा विज्ञान में भाषा का अध्ययन किस प्रकार से होता है? यह सारी बातों का पता हमें भाषा विज्ञान से चलता है। भाषा विज्ञान क्या है? भाषा और विज्ञान का क्या संबध है? भाषा विज्ञान का अध्ययन किस तरह किया जाए? आदि बिन्दुओं को जानने का प्रयत्न करते हैं। हम यहाँ भाषा तथा विज्ञान का क्या संबंध है यह जानते हैं।

भाषा–संसार में मनुष्य द्वारा प्रयुक्त सार्थक ध्वनि समूहों को भाषा कहते हैं, जिसमें ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ अदि का प्रयोग होता है। संसार में रहने वाले सर्व-सामान्य मनुष्य भाषा का प्रयोग अपने विचारों को व्यक्त करने तथा दूसरों के साथ सम्प्रेषण (वार्तालाप) करने के लिए करते हैं। एक भाषा-भाषी व्यक्ति अपने भाषा समूह के व्यक्ति के साथ सम्प्रेषण कर सकता है, परन्तु अन्य भाषा-भाषी समूह के व्यक्ति के साथ उसे सम्प्रेषण करने में कठिनाई आ सकती है या सम्प्रेषण संभव नहीं होता है। इसका कारण यह है कि भाषा संकेतों की वह व्यवस्था है, जिसको भाषाई चिन्हों से कोडित किया जाता है। यह भाषाई चिन्ह वक्ता एवं श्रोता दोनों के मस्तिष्क में होते हैं तभी तो वक्ता द्वारा भेजे गए भाषाई सन्देश को श्रोता समझ लेता है। यदि उसे यह कोड पता नहीं है तो वह भाषा के संकेतों को डिकोड नहीं कर सकेगा, जिससे वह भाषा को समझ नहीं पाता. हम यह कह सकते हैं कि इस तरह से मनुष्य भाषा का प्रयोग समाज में करता है।

विज्ञान का अर्थ है कि किसी भी वस्तु या विषय का अध्ययन कर उससे संबंधित सम्पूर्ण तथ्यों को सामने लाना या किसी भी विषय का शास्त्रशुद्ध पद्धति से अध्ययन करना विज्ञान है। विज्ञान हमें विषय के बारे में विशिष्ट ज्ञान प्रदान करता है और उससे संबंधित तथ्यों को सामने रखता है। यहाँ भाषा विज्ञान के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा विज्ञान कहा जा साकता है। यहाँ विज्ञान, भाषा के सन्दर्भ में वही कार्य करता है, जो विज्ञान अन्य विषयों के सन्दर्भ में करता है, यहाँ भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन ध्वनि

विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान तथा प्रोक्ति विज्ञान, आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान को अध्ययन की सुविधा के लिए आगे दो भागों में बाँट सकते हैं, 1 सैद्धांतिक भाषा विज्ञान 2. अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान. आदि को निम्न बिंदु द्वारा समझ सकते हैं-

भाषा विज्ञान

1. सैद्धांतिक भाषा विज्ञान (ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान)
2. अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान (कंप्यूटेशनल भाषा विज्ञान, अनुवाद, कोश विज्ञान, समाज भाषा विज्ञान, भाषा शिक्षण, प्रोक्ति, शैली विज्ञान, व्युत्पत्ति विज्ञान, सांखिकी भाषा विज्ञान, मनोभाषा विज्ञान आदि)

1. सैद्धांतिक भाषा विज्ञान- यह भाषा विज्ञान का वह पक्ष है, जिसमें भाषा विज्ञान से संबंधित सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है। सैद्धांतिक पक्ष में ऐसे नियम दिए जाते हैं, जो भाषा के उच्चारण से लेकर उसके प्रयोग से संबंधित होते हैं, इसमें भाषा की उत्पत्ति से लेकर उसके उच्चारण और भाषा के व्याकरण का अध्ययन करते हैं। जिसमें- ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान आदि को संक्षेप में देख सकते हैं।

ध्वनि विज्ञान- ध्वनि विज्ञान, भाषा विज्ञान का वह सैद्धांतिक पक्ष है, जिसमें मानव मुख से उच्चरित सार्थक ध्वनियों की उत्पत्ति, प्रसार और श्रवण का अध्ययन किया जाता है। इसमें मनुष्य मुख से उच्चारित ध्वनियाँ और उनका उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण और अध्ययन किया जता है, साथ ही स्वर ध्वनियाँ और व्यंजन ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। उनके प्रयोग से संबंधित नियमों को बताया जाता है। ध्वनि विज्ञान की तीन शाखाएँ हैं, जिसमें औच्चारिकी शाखा, संचारिकी शाखा, और श्रौतिकी शाखा का समावेश है। औच्चारिकी शाखा- ध्वनियों के उच्चारण से संबंधित है। इसमें ध्वनियों का उच्चारण मुख विवर से किस प्रकार होता है, उच्चारण स्थान और उच्चारण प्रयत्न के आधार पर स्वर ध्वनियाँ और व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण का अध्ययन किया जाता है। जैसे- 'अ, आ,इ, ई,' आदि स्वर ध्वनियाँ हैं और 'क, ख, ग, घ,' आदि व्यंजन ध्वनियाँ हैं स्वर धनियों के उच्चारण में वायु मुख विवर से निर्बाध रूप से बाहर निकलती है, तो वही दूसरी ओर व्यंजनों के उच्चारण में वायु को मुख विवर में बाधा आती है।

2. रूप विज्ञान- इस विज्ञान में ध्वनियों से मिलकर शब्द कैसे बनते हैं, इसका अध्ययन किया जाता हैं। इसमें देखते है कि भाषा में ध्वनियाँ मिलकर शब्द कैसे बनाती हैं। इन निरर्थक ध्वनियों से अर्थवान शब्द कैसे बनते हैं। धातुओं में उपसर्ग और प्रत्यय लगाने से नए शब्द किस प्रकार बनते हैं, आदि का अध्ययन किया जाता है। रूप विज्ञान में अक्षर, शब्द और पद क्या है यह भी देखते हैं। जैसे- 'क,' 'म,' 'ल', एक-एक अक्षर हैं और इनसे शब्द बनेगा 'कमल' जो हमें कोश में मिलेगा और एक पुष्प विशेष का नाम बताएगा, जब इस शब्द का प्रयोग हम वाक्य में करेंगे तो वह शब्द 'पद' कहलाएगा। रूप विज्ञान में रूप और रूपिम के अंतर को भी देखा जाता है साथ ही संरूपों का भी अध्ययन होता है। जैसे- 'लड़की' शब्द एक रूप है, परन्तु इसमें 'लड़काई' प्रत्यय जुड़े हैं, जो अपने आप में मुक्त और बद्ध रूपिम है।

3. वाक्य विज्ञान- वाक्य विज्ञान में शब्दों से मिलकर वाक्य किस प्रकार से बनते हैं और उनका भाषा में प्रयोग कैसे होता है, इसका अध्ययन किया जाता है। वाक्य की आतंरिक संरचना और बाह्य संरचना को यहाँ देखा जाता है। साथ ही उनके अर्थ को भी देखा जाता है और उनके प्रयोग से संबंधित नियमों का अध्ययन भी किया जाता है। वाक्य विज्ञान में वाक्य के प्रकार को अर्थ और संरचना के आधार पर भी देखते हैं। व्याकरण की दृष्टी से व्याकरणिक शुद्धता भी वाक्य विज्ञान में देखी जाती है। रचना के आधार पर वाक्य के प्रकार निम्नवत हैं- सरलवाक्य, मिश्रवाक्य तथा संयुक्तवाक्य।

सरलवाक्य- सरलवाक्य में एक ही क्रिया होती है। सरलवाक्य को उपवाक्य भी कह सकते हैं। जैसे- राम घर जाता है। यह एक सरलवाक्य है।

मिश्रवाक्य– मिश्रवाक्य में कम से कम दो उपवाक्य होते हैं, जिसमें एक मुख्य और दूसरा उस पर आश्रित होता है, जैसे- लड़के ने कहा कि मैं कल दिल्ली जाऊंगा. इस वाक्य में पहला वाक्य 'लड़के ने कहा,' मुख्य है, तो दूसरा वाक्य 'मैं कल दिल्ली जाऊंगा.' प्रथम वाक्य पर आश्रित है।

संयुक्तवाक्य– संयुक्त वाक्यों में कम से कम दो सरल वाक्य होते हैं, जिसमें दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं, यानि वे एक दुसरे पर आश्रित नहीं होते हैं। जैसे- मोहन घर गया और सो गया, इसमें मोहन घर गया और मोहन सो गया दोनों स्वतंत्र वाक्य है।

4. अर्थ विज्ञान- अर्थ विज्ञान, सैद्धांतिक भाषा विज्ञान का वह पक्ष है, जिसमें भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन किया जाता है। यहाँ पर शब्द और अर्थ

का संबंध, वाक्य और अर्थ का संबंध आदि का अध्ययन होता है। अर्थ के बिना भाषा का महत्त्व न के बराबर होता है। शब्द और अर्थ के संबंध में पर्यायी अर्थ वाले शब्द, विलोम अर्थ वाले शब्द, समनामता वाले शब्द, अवनामता वाले शब्द तथा अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच और अर्थादेश का अध्ययन भी किया जाता है। अर्थ ग्रहण करने में जो समस्याएँ आती हैं उनका भी अध्ययन किया जाता है। वाक्य और अर्थ के संबंध में अनुलग्नता, पूर्वमान्यता, खण्डीकरण, पर्ययता आदि. सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।

2. अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान- अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान का वह पक्ष हैं, जिसमें भाषा का प्रयोग समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किया जाता है या कह सकते है कि भाषा से संबंधित कार्य, जो अलग- अलग क्षेत्रों में किए जाते हैं वे सारे अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान में आते हैं।

(1) कंप्यूटेशनल भाषा विज्ञान—यह भाषा विज्ञान का वह अनुप्रयोगात्मक पक्ष है, जिसमें भाषा का प्रयोग कंप्यूटर के माध्यम से करके ऐसे उपकरणों का निर्माण करना है, जो मनुष्य को बेहतर सुविधा प्रदान कर सके, जिसके प्रयोग से मनुष्य को समाज में भाषा से संबंधित कार्यों के लिए परेशानी न हो।

कंप्यूटेशनल भाषा विज्ञान में कंप्यूटर के माध्यम से भाषा का विकास करने का कार्य किया जाता है। इसके लिए कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की सहायता ली जाती है और मशीनी अनुवाद, वाक् से पाठ, पाठ से वाक् आदि उपकरणों का निर्माण किया जाता है। मशीनी अनुवाद का क्षेत्र व्यापक है। इसमे स्त्रोत भाषा से लक्ष भाषा में अनुवाद का कार्य किया जाता है, जो मशीन की सहायता से होता है।

(2) अनुवाद—अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का वह पक्ष है जिसमें एक भाषा से दूसरी भाषा में पाठ का स्थानांतरण करना है। अनुवाद में स्त्रोत भाषा से लक्ष भाषा में अर्थ का स्थानांतरण भी किया जाता है, जिससे एक भाषा समुदाय का व्यक्ति अन्य भाषाओँ में जो ज्ञान है उसे अपनी भाषा के माध्यम से ग्रहण कर सके। अनुवाद की प्रक्रिया को विद्वानों ने इस प्रकार से स्पष्ट किया है। स्त्रोत भाषा ..... विश्लेषण..... अंतरण.....पुनर्गठन.....लक्ष भाषा।

(3) कोश विज्ञान- कोश विज्ञान भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करता है। इसमें पर्यायी शब्द, विरुद्धार्थी शब्द आदि का समावेश होता है। कोश विज्ञान में एक भाषा कोश, द्विभाषी कोश और बहुभाषी कोश आदि का निर्माण किया जाता है, जो एक भाषा के शब्दों के लिए दूसरी भाषा में अर्थ को प्रतिपादित करता है।

(4) समाज भाषा विज्ञान- भाषा समाज का एक अभिन्न अंग है और समाज के बिना भाषा अधूरी है। मनुष्य भाषा का प्रयोग समाज के बाहर नहीं करता, यदि समाज नहीं रहेगा तो भाषा का भी कोई अस्तित्त्व नहीं रहेगा. मनुष्य समाज में भाषा का प्रयोग आयु में छोटे, बड़े और बराबर के लोगों से अलग-अलग भातिं से करता है। वह घर, बाजार और दफ्तर में भी भाषा का प्रयोग श्रोता के अनुरूप करता है, समाज भाषा विज्ञान में इन्ही बातों का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है।

(5) भाषा शिक्षण–भाषा शिक्षण में भाषा के अध्ययन अध्यापन से संबंधित कार्य को किस प्रकार से आसन बनाया जा सकता है, इसका अध्ययन किया जाता है। इसमें प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा, और अन्य भाषा शिक्षण, व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटी विश्लेषण आदि का अध्ययन होता है। साथ ही इसमें व्यक्ति बोली, बोली, विभाषा और भाषा का भी विचार करते हैं।

(6) प्रोक्ति–प्रोक्ति विज्ञान, भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है जिसमें भाषा को वाक्य से ऊपर के स्तर पर देखा जाता है। भाषा में एक वाक्य दुसरे वाक्य से किस प्रकार संबंधित है। आपस में वाक्य मिलकर किस तरह पाठ बनाते हैं। पाठ भाषा के निश्चित संप्रेशनात्मक प्रकार्य को कहते. यानि कोई भी पाठ तब तक पाठ नहीं कहलाएगा, जब तक उससे पूर्ण संप्रेषण न हो. कुछ भाषाविद पाठ और प्रोक्ति को अलग-अलग मानते हैं तो कुछ पाठ और प्रोक्ति को एक ही मानते हैं। वैसे देखा जाए तो पाठ भाषा के उत्पादन और उसके निर्वाचन पर बल देता है और प्रोक्ति अर्थ निर्धारण की प्रक्रिया और उसके विश्लेषण पर बल देती है। प्रोक्ति विश्लेषण में हम भाषा के पाठगत सन्दर्भ और पाठ बाह्य सन्दर्भों को देखते हैं। पाठगत संदर्भ वे होते हैं, जो पाठ के भीतर की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी तरफ पाठ बाह्य सन्दर्भ पाठ में किसी वाह्य वस्तु की उपस्थिति को बताने का कार्य करते हैं। पाठगत सन्दर्भों में संसक्ति और संगति का समावेश हैं।

(7) शैली विज्ञान- प्रत्येक साहित्यकार अपनी अनुभूति को किसी-न-किसी ढंग या पद्धति का निर्धारण गुणों के आधार पर किया जाता है। इस निर्धारण को रीति या शैली कहते हैं। बीसवीं सदी के आरम्भ में जेनेवा स्कूल के भाषा वैज्ञानिक चार्ल्स बेली ने शैली के भाषा वैज्ञानिक विवेचन की बात उठायी। उनके मतानुसार वैयक्तिक भाषा में भावात्मक निहित रहती है, जो विशिष्ट परिस्थितियों में सहज भाव से मनुष्य के

उच्चारणोपयोगी अवयवों से निससृत होती है। शैली विज्ञान में शैली का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह विज्ञान काव्यशास्त्र के पर्याप्त निकट है। भारतीय साहित्यशास्त्र के रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि सम्प्रदाय इसमें प्रमुखतया आते हैं और शेष रस, अलंकार तथा वक्रो भी अपनी भूमिका निभाते हैं। पाश्चात काव्यशास्त्र में 'स्टाइल' के लक्षण भी आधुनिक विश्लेषण में अपना महत्व जमाये हुए हैं। भाषा के दो विशिष्ट रूप होते हैं-रूप और अर्थ।रीति रूप के बारे में कहती है, ध्वनि अर्थ के बारे में वक्रोक्ति इन दोनों को साथ लेकर चलती है। 'स्टाइल' भी कुछ-कुछ रूप और अर्थ के गुणों को अपने में संजोए हुए है। इस विज्ञान की दृष्टि से ध्वनि,रूप,शब्द,वाक्य आदि पर विचार किया जाता है जैसे-

ध्वनीय शैली-विज्ञान
रूपीय शैली-विज्ञान
शब्दीय शैली-विज्ञान
वाक्यीय शैली-विज्ञान
अर्थीय शैली-विज्ञान

इन पांच उपभेदों से साहित्य-रचना या बातचीत में प्रभाव आदि की दृष्टि से किस प्रकार की ध्वनयों, रूपों, शब्दों, वाक्यों या अर्थों को छोड़ा जाए और किन्हें प्रयुक्त किया जाए। इस तरह इसमें चयन-पद्धति एवं उसके आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है। इस प्रकार का विचार साहित्यिक भाषा के संबंध में तो होता ही है,रोज बोली जाने बोली जानेवाली भाषा में भी वक्ता के सामाजिक स्तर,सन्दर्भ या विषय आदि की दृष्टि से रूपों या शब्दों आदि के चयन में पर्याप्त अन्तर पड़ता है। इसी प्रकार विशिष्ट प्रभाव के लिए सामान्य भाषा में परिवर्तन करके भी भाषा को आकर्षक बनाया जाता है।

8. **व्युत्पत्ति विज्ञान**- व्युत्पत्ति-विज्ञान में शब्दों के मूल का अध्ययन किया जाता है। यह ध्वनि-विज्ञान, रूप-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान का सम्मिलित योग है। इसके लिए अंग्रेजी शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह यूनानी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है etymon और सवहप। etymon का अर्थ है- किसी भाषा का शाब्दिक अर्थ है उसकी उत्पत्ति के अनुसार तथा logia का अर्थ है लेखा-जोखा अर्थात किसी शब्द का उसकी व्युत्पत्ति के अनुसार लेखा-जोखा ही एटिमॅलाजी है। वेब्स्टर कोश ने इसके अर्थ को परिभाषित करते हुए लिखा है- The history of linguistic form (as a word) shown by

tracing its development since its earliest recorded occurrence in the language where it is found,

9. **सांखिकी भाषा विज्ञान**- भाषा विज्ञान की इस शाखा में सांख्यिकी के आधार पर भाषा के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाता है। सांख्यिकी का प्रयोग ध्वनि,शब्द-रूप तथा रचना तीनों क्षेत्रों में किया जाता है। स्वनग्राम के स्तर पर स्वरावृत्ति, व्यंजनावृत्ति, संयुक्त स्वरावृत्ति, स्वर-व्यंजन के विविध संयोग लिए जाते हैं।

इस पद्धति में शब्दों की आवृत्ति, वाक्य-रचना, विराम-चिह्नों के प्रयोग, वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों की संख्या आदि सभी से काम लिया जाता है।

10. **मनोभाषा विज्ञान–** मनोभाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें भाषा की उत्पत्ति मन में कैसे होती है? भाषा केवल वार्तालाप का ही माध्यम है? व्यक्ति स्वलाप के लिए भी भाषा का ही प्रयोग करता है। मनुष्य समाज में भाषा का व्यवहार करने से पहले उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है ? मस्तिष्क में भाषा व्यवस्था के नियम कैसे काम करते हैं? भाषा से संबंधित दोष या भाषिक रोग जैसे- वाचाघात, अपठन, लेखन वैकल्य, मानसिक मंदन, प्रमस्तिष्कीय घात, वाग्दोष, आदि का अध्ययन किया जाता है।

11. **जैविक भाषा विज्ञान**- भाषा के विकास और प्रयोग के लिए कौनसी जैविक परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। समाज में भाषा का विकास और मनुष्य में भाषा विकास की क्षमता आदि का अध्ययन इस शाखा में करते हैं। सन 2000 में जेनाकिंग नाकाम भाषाविद ने एक किताब प्रकाशित की जिसका नाम Bio Linguistics था उसी से इस शाखा का आरंभ माना जाता है। यह क्षेत्र भाषा क्या है? भाषा क्षमता कैसे प्राप्त होती है? भाषा व्यवहार क्या है?भाषा के पीछे कौनसी स्नायविक प्रक्रिया कार्य करती है? मानव जाति में भाषा का विकास कैसे हुआ? आदि बिंदुओं पर प्रकाश डालती है। यह भाषा विज्ञान की नई शाखाओं में से एक है, जिस पर अभी बहुत कार्य होना शेष है।

12. **नृभाषा विज्ञान–** नृभाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान का वह अनुप्रयुक्त क्षेत्र हैं जिसमें मनुष्य जाति की उत्पत्ति से लेकर उसके विकास तक भाषा किस तरह से उस विशेष समुदाय के साथ विकसित हुई या भाषा के आधार पर समुदायों को कैसे बाँटा गया, विशिष्ट समुदाय के लुप्त होने से भाषा किस प्रकार लुप्त हो गई तथा उस समुदाय की संस्कृति, प्रथा, परम्परा, प्रशासकीय कार्य, आदि से संबंधित कार्य इस क्षेत्र में करते हैं।

13. **क्षेत्रीय भाषा विज्ञान**- क्षेत्रीय भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ी भाषा का अध्ययन होता है। इस शाखा को बोली भूगोल या भाषा भूगोल भी कहते हैं। इसमें किसी विशिष्ट क्षेत्र से जुड़ी भाषा, बोली का अध्ययन करते हैं। इससे क्षेत्र के अनुसार भाषा का किस प्रकार प्रयोग होता है और भाषा के अंतर्गत बोली जाने वाली बोलियों के क्षेत्र के बारे में पता चलता है।

14. **फोरेंसिक भाषा विज्ञान**- यह भाषा विज्ञान की एक अनुप्रयुक्त शाखा है, जो अपराधिक जगत से जुड़े लोग तथा उनकी भाषा का अध्ययन करती है। इसमें यह देखा जाता है कि अपराधिक मामलों से जुड़े लोग किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं। वह अपराधिक गतिविधियों में कौनसी कूट भाषा का प्रयोग करते हैं। इसमें दिए गए बयान तथा फोन से किया हुआ संभाषण, रिकॉर्डर भाषा और अन्य अपराधों से संबंधित लिखित दस्तावेजों का सूक्ष्म वलोकन भाषा विशेषज्ञ द्वारा करते हैं।

15. **क्षेत्र-कार्य भाषविज्ञान–** क्षेत्र कार्य भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष हैं। यह ऐसा क्षेत्र है, जिसमें उन भाषाओँ का अध्ययन किया जाता, जो लुप्त होने की कगार पर है या जिनको सरकार द्वारा संरक्षित भाषा घोषित किया है। संसार में ऐसी अनेक भाषाएँ हैं, जो लुप्त हो गई है, इन्हें मृत भाषा भी कहते हैं। जिनको बोलने वाला कोई व्यक्ति नहीं बचा, कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें बोलने वाले केवल एक या दो ही व्यक्ति बचे हैं। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, एक समुदाय मात्र के लिए सिमित हो गई है, उस समुदाय के खत्म होने से वह भाषा भी खत्म हो जाएगी, कुछ भाषाएँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग केवल कुछ समुदाय ही करते हैं। ऐसी भाषाओँ का डेटा या कॉर्पस रिकार्ड कर उनका संरक्षण करते हैं, और उनको जीवित रखने का कार्य इस क्षेत्र में किया जाता हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भाषा तथा विज्ञान क्या है? कैसे ध्वनियों से भाषा बनती है? समाज में भाषा का प्रयोग कैसे किया जाता है? मस्तिष्क में भाषा का निर्माण कैसे होता है? इत्यादि का अध्ययन भाषा विज्ञान में करते हैं। भाषा की ध्वनियों का अध्ययन ध्वनि-विज्ञान सिखाता है। भाषा का समाज में विकास कैसे हुआ तथा समाज में भाषा का प्रयोग कैसे होता है यह समाज भाषा विज्ञान से पता चलता है। भाषा की शब्दावली साथ ही भाषा में नए शब्दों का प्रयोग कैसे होता है आदि के बारे में कोश विज्ञान से पता चलता है, जिससे अलग-अलग भाषा में एकभाषीय, द्विभाषी कोष का निर्माण किया जाता

है, भाषा शिक्षण यह बताता है कि किस तरह शिक्षा का कार्य करना चाहिए शिक्षा को सरल बनाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में कौन से उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे शिक्षा का कार्य अधिक प्रभावी माध्यम से हो सके। भाषा का सही प्रयोग किस प्रकार से किया जाए इसके लिए भाषा का व्याकरण नियम बताता हैं। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा विज्ञान के विकास के लिए बहुत संभावनाएं हैं, फिर भी इस विशाल देश में इस विषय के बहुत कम ही जानकर हैं, इसका मुख्य कारण हैं, इस विषय के बारे में जागरूकता कम होने की वजह कह सकते हैं। बहुत कम ही लोग इस विषय के बारे में जानते हैं। भाषा वैज्ञानिक क्या है यह जानते हैं। आज के इस आधुनिक युग में कंप्यूटर का महत्त्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा हैं आज कंप्यूटर के द्वारा कोई भी काम मिनटों में होता हैं। कंप्यूटर भाषा विज्ञान एक ऐसा विज्ञान हैं, जो कंप्यूटर में कृत्रिम बुद्धि विकास के लिए कार्यरत है, इसके लिए भाषा वैज्ञानिक, कंप्यूटर भाषा वैज्ञानिक, कंप्यूटर इंजिनियर आदि मिलकर कार्य कर रहे जो भाषा से संबंधित मशीनी अनुवाद, जो कि अपने आप में बहुत ही बड़ा विकासशील क्षेत्र है, वाक् से पाठ और पाठ से वाक् निर्माण प्रक्रियाँ में भी कार्य हो रहा है, जो कि अभी विकास की दिशा में आगे बढ़ रहा है। मोटे तौर पर देखे तो कंप्यूटर में भाषा से संबंधित कोई भी कार्य जो कम्पूटर पर किया जाता, वह भाषा वैज्ञानिक के बिना संभव नहीं है। अदि क्षेत्र में भाषा विज्ञान को और आगे जाना है साथ ही इसके विकास की बहुत अधिक संभावनाए हैं। इसलिए मैं यहाँ यह कहना चाहूँगा कि आने वाले कुछ सालों में भाषा विज्ञान एक नयी उचाई को छुएगा और इसका अध्ययन और विकास जिस प्रकार यूरोपीय देशों में हो रहा है भारत में भी होगा, कहने का तात्पर्य यह है कि आनेवाले दिनों में भाषा विज्ञान का भविष्य बहुत अधिक उज्ज्वल है। भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है, जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और सन्दर्भ का विश्लेषण करता है। भाषा के दस्तावेजीकरण और विवेचन का सबसे प्राचीन कार्य 6ठी शताब्दी के महान भारतीय वैयाकरण पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है।

भाषा विज्ञान के अध्ययेता 'भाषा विज्ञानी' कहलाते हैं। भाषा विज्ञान, व्याकरण से भिन्न है। व्याकरण में किसी भाषा का कार्यात्मक अध्ययन किया जाता है, जबकि भाषा विज्ञानी इसके आगे जाकर भाषा का अत्यन्त व्यापक

अध्ययन करता है। अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

भाषा विज्ञान भाषा को भाषा ही जानकर उसका वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

भाषा विज्ञान के अनेक नाम

भाषा-सम्बन्धी इस अध्ययन को यूरोप में आज तक अनेक नामों और संज्ञाओं से अभिहित किया जाता रहा है। सर्वप्रथम इस अध्ययन को फिलोलॉजी शब्द के आगे विशेषण के रूप में एक शब्द जोड़ा गया- तब इसे ''कम्पैरेटिव फिलोलॉजी'' कह कर पुकारा गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक व्याकरण तथा भाषा-विषयक अध्ययन को प्रायः एक ही समझा जाता था। अतः इसे विद्वानों ने 'कम्पैरेटिव ग्रामर' नाम भी दिया। फ्रांस में इसको लैंगिस्तीक् नाम दिया गया। फ्रांस में भाषा सम्बन्धी कार्य अधिक होने के कारण उन्नीसवीं सदी में सम्पूर्ण यूरोप में ही 'Linguistique' अथवा 'Linguistics' नाम ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त 'साइंस ऑफ लैंग्वेज', 'ग्लौटोलेजी' आदि अन्य नाम भी इस विषय को प्रकट करने के लिए काम में आये। आज इन सभी नामों में से ''लिंग्विस्टिक्स'', ''फिलोलॉजी'' मात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इन सभी यूरोपीय नामों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में जो नाम प्रयोग में लाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं- ''भाषा-शास्त्र'', ''भाषा-तत्त्व'', ''भाषा-विज्ञान'', तथा ''तुलनात्मक भाषा-विज्ञान'' आदि। इन सभी नामों में से सर्व प्रचलित नाम ''भाषा-विज्ञान'' है। इन नाम में प्राचीन और नवीन सभी नामों का समाहार-सा हुआ जान पड़ता है। अतः यही नाम इस शास्त्र के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

इतिहास

अपने वर्तमान स्वरूप में भाषा विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन कहा जाता है। अति प्राचीन काल से ही भाषा-सम्बन्धी अध्ययन की प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में पाई जाती है। 'शिक्षा' नामक वेदांग में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण- अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। 'प्रातिशाख्य' एवं निरूक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों पर वैज्ञानिक विश्लेषण भाषा का

वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है। भर्तृहरि के ग्रन्थ 'वाक्य पदीय' के अन्तर्गत 'शब्द' के स्वरूप का सूक्ष्म, गहन एवं व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। वहाँ शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसकी 'अक्षर' संज्ञा बताई गई है। प्रकारान्तर से यह एक भाषा-अध्ययन समबन्धी ग्रन्थ ही है।

संस्कृत साहित्य में दर्शन एवं साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमें 'शब्द''अर्थ', 'रस' 'भाव' के सूक्ष्म विवेचन के अन्तर्गत भाषा वैज्ञानिक चर्चाओं के ही संकेत प्राप्त होते हैं। संस्कृत-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली भाषा-विचार-विषयक सामग्री ही निश्चित रूप से वर्तमान भाषा-विज्ञान की आधारशिला कही जा सकती है।

आधुनिक विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का सूत्रपात यूरोप में सन 1786 ई0 में सर विलियम जोन्स नामक विद्वान द्वारा किया गया माना जाता है। संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस संभावना को व्यक्त किया था कि संभवत: इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रूप ही आधार बना हुआ है। अत: इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

सामान्य परिचय

'भाषा-विज्ञान' नाम में दो पदों का प्रयोग हुआ है। 'भाषा' तथा 'विज्ञान'। भाषा-विज्ञान को समझने से पूर्व इन दोनों शब्दों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

'भाषा' शब्द संस्कृत की ''भाष्'' धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है-व्यक्त वाक (व्यक्तायां वाचि)। 'विज्ञान' शब्द में 'वि' उपसर्ग तथा 'ज्ञा' धातु से 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय लगाने पर बनता है। सामान्य रूप से 'भाषा' का अर्थ है 'बोल चाल की भाषा या बोली' तथा 'विज्ञान' का अर्थ है 'विशेष ज्ञान', किन्तु 'भाषा-विज्ञान' शब्द में प्रयुक्त इन दोनों पदों का स्पष्ट और व्यापक अर्थ समझ लेने पर ही हम इस नाम की सारगर्भिता को जानने में सफल होंगे। अत: हम यहाँ इन दोनों पदों के विस्तृत अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

भाषा:मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने भावों और विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाने की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है। इस प्रकार भाषा का अस्तित्त्व मानव समाज में अति प्राचीन सिद्ध होता है। मानव के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का प्रकाशन करने के लिए, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास को जानने के लिए भाषा एक महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करती है। हमारे पूर्व-पुरुषों से सभी साधारण और असाधारण अनुभव हम भाषा के माध्यम से ही जान सके हैं। हमारे सभी सद्ग्रन्थों और शास्त्रों से मिलने वाला ज्ञान भाषा पर ही निर्भर है। महाकवि दण्डी ने अपने महान ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में भाषा की महत्ता सूचित करते हुए लिखा है:-

इदधतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योत्तिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात् यह सम्पूर्ण भुवन अंधकारपूर्ण हो जाता, यदि संसार में शब्द-स्वरूप ज्योति अर्थात् भाषा का प्रकाश न होता। स्पष्ट ही है कि यह कथन मानव भाषा को लक्ष्य करके ही कहा गया है। पशु-पक्षी भावों को प्रकट करने के लिए जिन ध्वनियों का आश्रय लेते हैं वे उनके भावों का वहन करने के कारण उनके लिए भाषा हो सकती हैं, किन्तु मानव के लिए अस्पष्ट होने के कारण विद्वानों ने उसे 'अव्यक्त वाक्' कहा है, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखती। क्योंकि 'अव्यक्त वाक्' में शब्द और अर्थ दोनों ही अस्पष्ट बने रहते हैं। मनुष्य भी कभी-कभी अपने भावों को प्रकट करने के लिए अंग-भंगिमा, भ्रू-संचालन, हाथ-पाँव-मुखाकृति आदि के संकेतों का प्रयोग करते हैं, परन्तु वह भाषा के रूप में होते हुए भी 'व्यक्त वाक्' नहीं है। मानव भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह 'व्यक्त वाक्' अर्थात् शब्द और अर्थ की स्पष्टता लिए हुए होती है। महाभाष्य के रचयिता पतंजलि के अनुसार 'व्यक्त वाक्' का अर्थ भाषा के वर्णनात्मक होने से ही है।

यह सत्य है कि कभी-कभी संकेतों और अंगभंगिमाओं की सहायता से भी हमारे भाव और विचारों का प्रेषण बड़ी सरलता से हो जाता है। इस प्रकार वे चेष्टाएँ भाषा के प्रतीक बन जाती हैं, किन्तु मानव भावों को प्रकट करने का सबसे उपयुक्त साधन वह वर्णनात्मक भाषा है जिसे 'व्यक्त वाक्' की संज्ञा प्रदान की गई है। इस में विभिन्न अर्थों को प्रकट करने के लिए कुछ निश्चित् उच्चरित या कथित ध्वनियों का आश्रय लिया जाता है, अतः भाषा हम उन शब्दों के समूह को कहते हैं, जो विभिन्न अर्थों के संकेतों से सम्पन्न होते हैं। जिनके द्वारा हम अपने मनोभाव

सरलता से दूसरों के प्रति प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार भाषा की परिभाषा करते हुए हम उसे मानव-समाज में विचारों और भावों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनाया जाने वाला एक माध्यम कह सकते हैं, जो मानव के उच्चारण अवयवों से प्रयत्नपूर्वक नि:सृत की गई ध्वनियों का सार्थक आधार लिए रहता है। वह ध्वनि-समूह शब्द का रूप तब लेते हैं, जब वे किसी अर्थ से जुड़ जाते हैं। सम्पूर्ण ध्वनि-व्यापार अर्थात् शब्द-समूह अपने अर्थ के साथ एक 'यादृच्छिक' सम्बंध पर आधारित होता है। 'यादृच्छिक' का अर्थ है पूर्णतया कल्पित। संक्षेप में विभिन्न अर्थों में व्यक्त किये गए मुख से उच्चरित उस शब्द समूह को हम भाषा कहते हैं, जिसके द्वारा हम अपने भाव और विचार दूसरों तक पहुँचाते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लाभ

भाषा-विज्ञान के अध्ययन से हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे-

1. अपनी चिर-परिचित भाषा के विषय में जिज्ञासा की तृप्ति या शंकाओं का निर्मूलन।
2. ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक संस्कृति का परिचय।
3. किसी जाति या सम्पूर्ण मानवता के मानसिक विकास का परिचय।
4. प्राचीन साहित्य का अर्थ, उच्चारण एवं प्रयोग सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान।
5. विश्व के लिए एक भाषा का विकास।
6. विदेशी भाषाओं को सीखने में सहायता।
7. अनुवाद करने वाली तथा स्वयं टाइप करने वाली एवं इसी प्रकार की मशीनों के विकास और निर्माण में सहायता।
8. भाषा, लिपि आदि में सरलता, शुद्धता आदि की दृष्टि से परिवर्तन-परिवर्धन में सहायता।

इन सभी लाभों की दृष्टि से आज के युग में भाषा-विज्ञान को एक अत्यन्त उपयोगी विषय माना जा रहा है और उसके अध्ययन के क्षेत्र में नित्य नवीन विकास हो रहा है।

भाषा विज्ञान-कला है या विज्ञान?

भाषा एक प्राकृतिक वस्तु है, जो मानव को ईश्वरीय वरदान के रूप में मिली हुई है। भाषा का निर्माण मनुष्य के मुख से स्वाभाविक रूप में नि:सृत

ध्वनियों (वर्णों) के द्वारा होता है। भाषा का सामान्य ज्ञान इसके बोलने और सुनने वाले सभी को हो जाता है। यही भाषा का सामान्य ज्ञान कहलाता है। इसके आगे, भाषा कब बनी, कैसे बनी ? इसका प्रारम्भिक एवं प्राचीन स्वरूप क्या था ? इसमें कब-कब, क्या-क्या परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों के क्या कारण हैं ? अथवा कुल मिलाकर भाषा कैसे विकसित हुई ? उस विकास के क्या कारण हैं ? कौन सी भाषा किस दूसरी भाषा से कितनी समानता या विषमता रखती है ? यह सब भाषा का विशेष ज्ञान या 'भाषा-विज्ञान' कहा जाएगा। इसी भाषा-विज्ञान के विशेष रूप अर्थात् भाषा विज्ञान को आज अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय मान लिया गया है।

भाषा-विज्ञान जब अध्ययन के विषयों में बड़ी-बड़ी कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया तो सर्वप्रथम यह एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि भाषा-विज्ञान को कला के अन्तर्गत गिना जाए या विज्ञान में। अर्थात् भाषा-विज्ञान कला है अथवा विज्ञान है। अध्ययन की प्रक्रिया एवं निष्कर्षों को लेकर निश्चय किया जाने लगा कि वस्तुतः उसे भौतिक विज्ञान, एवं रसायन विज्ञान आदि की भाँति विशुद्ध विज्ञान माना जाए अथवा चित्र, संगीत, मूर्ति, काव्य आदि कलाओं की भाँति कला के रूप में स्वीकार किया जाए।

भाषा-विज्ञान कला नहीं है

कला का सम्बन्ध मानव-जाति वस्तुओं या विषयों से होता है। यही कारण है कि कला व्यक्ति प्रधान या पूर्णतः वैयक्तिक होती है। व्यक्ति सापेक्ष होने के साथ-साथ किसी देश विशेष और काल-विशेष का भी कला पर प्रभाव रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी काल में कला के प्रति जो मूल्य रहते हैं उनमें कालान्तर में नये-नये परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं तथा वे किसी दूसरे देश में भी मान लिए जाएँ, यह भी आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति को किसी वस्तु में उच्च कलात्मक अभिव्यक्ति लग रही है। किन्तु दूसरे को वह इस प्रकार की न लग रही हो। अतः कला की धारणा प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न हुआ करती है।

कला का सम्बन्ध मानव हृदय की रागात्मिक वृत्ति से होता है। उसमें व्यक्ति की सौन्दर्यानुभूति का पुट मिला रहता है। कला का उद्देश्य भी सौन्दर्यानुभूति कराना, या आनन्द प्रदान करना है, किसी वस्तु का तात्विक विश्लेषण करना नहीं। कला के स्वरूप की इन सभी विशेषताओं की कसौटी

पर परखने से ज्ञात होता है कि भाषा-विज्ञान कला नहीं है, क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय की सरसता-वृत्ति से न होकर बुद्धि की तत्त्वग्राही दृष्टि से होता है। भाषा-विज्ञान का उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना या मनोरंजन कराना भी नहीं है। वह तो हमारे बौद्धिक चिन्तन को प्रखर बनाता है। भाषा के अस्तित्त्व का तात्त्विक मूल्यांकन करता है। उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। भाषा-विज्ञान के निष्कर्ष किसी व्यक्ति, राष्ट्र या काल के आधार पर परिवर्तित नहीं होते हैं तथा भाषा-विज्ञान के अध्ययन का मूल आधार जो भाषा है वह मानवकृत पदार्थ नहीं है। अतः भाषा-विज्ञान को हम कला के क्षेत्र में नहीं गिन सकते। भाषा-विज्ञान की उपयोगिता इसमें है कि वह भाषा सिखाने की कला का ज्ञान कराता है। इसी कारण स्वीट ने व्याकरण को भाषा को कला तथा विज्ञान दोनों कहा है। भाषा का शुद्ध उच्चारण, प्रभावशाली प्रयोग कला की कोटि में रखे जा सकते हैं।

भाषा विज्ञान–विज्ञान है

भाषा-विज्ञान को कला की सीमा में नहीं रखा जा सकता, यह निश्चय हो जाने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या भाषा-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, रसायन-विज्ञान आदि विषयों की भाँति पूर्णतः विज्ञान है ?

अनेक विद्वानों की धारणा में भाषा-विज्ञान विशुद्ध विज्ञान नहीं है। उनकी धारणा के अनुसार अभी भाषा-विज्ञान के सभी प्रयोग पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए हैं और उसके निष्कर्षों को इसीलिए अंतिम निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता। इसके साथ ही भाषा-विज्ञान के सभी निष्कर्ष विज्ञान की भाँति सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी नहीं है।

जिस प्रकार गणित शास्त्र में 2 + 2 = 4 सार्वकालिक, विकल्परहित निष्कर्ष है, जो सर्वत्र स्वीकार किया जाता है, भाषा-विज्ञान के पास इस प्रकार के विकल्प-रहित निर्विवाद निष्कर्ष नहीं है। विज्ञान में तथ्यों का संकलन और विश्लेषण होता है और ध्वनि के नियम अधिकांशतः विकल्परहित ही हैं, अतः कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा-विज्ञान को मानविकी (कला) एवं विज्ञान के मध्य में रखा जा सकता है।

विचार करने पर हम देखते हैं कि विज्ञान की आज की द्रुत प्रगति में प्रत्येक विशेष ज्ञान अपने आगामी ज्ञान के सामने पुराना और अवैज्ञानिक सिद्ध होता जा रहा है। नित्य नवीन आविष्कारों के आज के युग में वैज्ञानिक दृष्टि नित्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और नवीन से नव्यतर होती चली जा रही है। आज के विकसित

ज्ञान-क्षेत्र को देखते हुए कई वैज्ञानिक मान्यताएँ पुरानी और फीकी पड़ गई है। न्यूटन का प्रकाश सिद्धान्त भी अब सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा है। इससे यह सिद्ध होता है कि नूतन ज्ञान के प्रकाश में पुरातन ज्ञान भी विज्ञान के क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है।

अत: विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर भाषा-विज्ञान को हम विज्ञान के ही सीमा-क्षेत्र में पाते हैं। भाषा-विज्ञान निश्चय ही एक विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत हम भाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह सही है कि अभी तक भाषा-विज्ञान का वैज्ञानिक स्तर पर पूर्णत: विकास नहीं हो पाया है। यही कारण है कि प्रसिद्ध ग्रिम-नियम के आगे चल कर ग्रासमान और वर्नर को उसमें सुधार करना पड़ा है। उक्त सुधारों से पूर्व ग्रिम का ध्वनि नियम निश्चित् नियम ही माना जाता था और सुधारों के बाद भी वह निश्चित् नियम ही माना जाता है। इस प्रकार नये ज्ञान के प्रकाश में पुराने सिद्धान्तों का खण्डन होने से विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। वास्तव में यही शुद्ध विज्ञान है।

सन् 1930 के बाद जहाँ वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान को पुन: महत्त्व प्राप्त हुआ, वहाँ तब से लेकर आज तक द्रुत गति में विकास हुआ है। जब से ध्वनि के क्षेत्र में यंत्रों की सहायता से नये-नये परीक्षण प्रारम्भ हुए हैं तथा प्राप्त निष्कर्ष पूरी तरह नियमित होने लगे हैं, तब से ही भाषा-विज्ञान धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ विज्ञान की श्रेणी में माना जाने लगा है।

विज्ञान की एक बड़ी विशेषता है उसका प्रयोगात्मक होना। अमेरिकी विद्वान् बलूम फील्ड (सन् 1933 ई0) के बाद अमेरिकी भाषा विज्ञानियों ने ध्वनि-विज्ञान एवं रूप-विज्ञान आदि के साथ भाषा-विज्ञान की एक नवीन पद्धति के रूप में प्रायोगिक भाषा-विज्ञान का बड़ी तीव्रता के साथ विकास किया है। इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान प्रयोगशालाओं का विषय बनता जा रहा है और उसके लिए अनेक यंत्रों का अविष्कार हो गया है। यह देख कर निश्चित रूप में इस विषय को विज्ञान ही कहा जाएगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

आजकल जबकि समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि शास्त्रीय विषयों के लिए जहाँ विज्ञान शब्द का प्रयोग करने की परम्परा चल पड़ी है तब शुद्ध कारण-कार्य परम्परा पर आधारित भाषा-विज्ञान को विज्ञान कहना किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं ठहराया जा सकता।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने अपने ग्रन्थ भाषा रहस्य में लिखा है-

"भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"

मंगल देव शास्त्री (तुलनात्मक भाषाशास्त्र) के शब्दों में-

"भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवी भाषा किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी के 'भाषा-विज्ञान' ग्रन्थ में यह परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

"जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए, इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषा विज्ञान कहते हैं।"

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है। डॉ. श्यामसुन्दर दास की परिभाषा में जहाँ केवल भाषा विज्ञान पर ही दृष्टि केन्द्रित रही है वहीं मंगलदेव शास्त्री एवं भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों को भी समाहित कर लिया है। परिभाषा वह अच्छी होती है, जो संक्षिप्त हो और स्पष्ट हो। इस प्रकार हम भाषा-विज्ञान की एक नवीन परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं- "जिस अध्ययन के द्वारा मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, उसे भाषा-विज्ञान कहा जाता है।"

दूसरे शब्दों में भाषा-विज्ञान वह है, जिसमें मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और व्यापक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

व्याकरण और भाषा-विज्ञान में अन्तर

(क) व्याकरण शास्त्र में किसी भाषा विशेष के नियम बताए जाते हैं, अतः उसका दृष्टिकोण एक भाषा पर केन्द्रित रहता है, किन्तु भाषा-विज्ञान में तुलना के लिए अन्य भाषाओं के नियम, अध्ययन का आधार बनाए जाते हैं। इस प्रकार व्याकरण का क्षेत्र सीमित है और भाषा-विज्ञान का व्यापक।

(ख) व्याकरण वर्णन-प्रधान है। वह किसी भाषा के नियम तथा साधु रूप सामने रख देता है। व्याकरण भाषा के व्यावहारिक पक्ष का संकेत करता है, उसके कारण व इतिहास की कोई विवेचना नहीं करता। संस्कृत की गम् धातु (गतः) से हिन्दी में गया बना है। परन्तु 'जाना', 'जाता' आदि शब्द 'या' धातु से बने हैं। इसी कारण गया शब्द को भी इसी के साथ जोड़ दिया गया है। व्याकरण की दृष्टि से कभी 'एक दश' शुद्ध शब्द रहा होगा, परन्तु कालान्तर में 'द्वादश' की नकल पर 'एकादश' का प्रचलन हो गया। व्याकरण तो प्रचलित रूप बतला कर चुप हो जाएगा पर भाषा-विज्ञान इससे भी आगे जाएगा, वह बताएगा कि इसके पीछे मुण्डा आदि आस-पास की भाषाओं का प्रभाव है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है।

(ग) भाषा-विज्ञान जहाँ भाषा के विकास का कारण समझाता है, वहाँ व्याकरण प्रचलित शब्द को 'साधु प्रयोग' कहकर भाषा-विज्ञान का अनुगमन करता जाता है। इस प्रकार व्याकरण भाषा विज्ञान का अनुगामी है। भाषा-विज्ञान में ध्वनि-विचार के अन्तर्गत हिन्दी के अधिकांश शब्द व्यंजनांत माने जाने लगे हैं जैसे– 'राम' शब्द का उच्चारण 'राम' न होकर राम् है, किन्तु व्याकरण अभी तक अकारांत मानता चला आ रहा है।

(घ) भाषा-विज्ञान में भाषा के जो परिवर्तन उसका विकास माने जाते हैं वे व्याकरण में उसकी भ्रष्टता कहे जाते हैं। यही कारण है कि संस्कृत के बाद प्राकृत (= बिगड़ी हुई) आदि नाम दिये गये। भाषा-विज्ञान 'धर्म' शब्द के 'धम्म' या 'धरम' हो जाने को उसका विकास कहता है और व्याकरण उसे विकार कहता है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान

भाषा के प्रचलित वर्तमान स्वरूप को छोड़ कर शेष सारी अध्ययन सामग्री भाषा-विज्ञान को साहित्य से ही उपलब्ध होती है। यदि आज हमारे सामने संस्कृत, ग्रीक और अवेस्ता साहित्य न होता तो भाषा-विज्ञान कभी यह जानने में सफल न होता कि ये तीनों भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से निकली हैं। इसी प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक का हिन्दी साहित्य हमारे सामने न होता तो भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किस प्रकार कर पाता।

भाषा-विज्ञान किसी प्रकार से भी भाषा का अध्ययन करे उसे पग-पग पर साहित्य की सहायता लेनी पड़ती है। बुन्देलखण्ड के नटखट बालकों के मुंह से यह सुन कर-

ओना मासी धम
बाप पढ़े ना हम

व्याकरण कहता है कि यह क्या बला है, प्राचीन साहित्य का अध्ययन ही उसे बतलाएगा कि शाकटायन के प्रथम सूत्र 'ऊँ नमः सिद्धत्' का ही यह बिगड़ा हुआ रूप है।

साहित्य भी भाषा-विज्ञान की सहायता से अपनी अनेक समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो जाता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर जायसीकृत 'पद्मावत' के बहुत से शब्दों को उनके मूल रूपों से जोड़ कर उनके अर्थों को स्पष्ट किया है। साथ ही शुद्ध पाठ के निर्धारण में भी इससे पर्याप्त सहायता ली है। अतः साहित्य और भाषा-विज्ञान दोनों एक दूसरे के सहायक हैं।

मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा हमारे भावों-विचारों अर्थात् मन का प्रतिबिम्ब होती है, अतः भाषा की सहायता से बहुत से समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। विशेष रूप से अर्थ विज्ञान तो मनोविज्ञान पर पूरी तरह से आधारित है। वाक्य-विज्ञान के अध्ययन में भी मनोविज्ञान से पर्याप्त सहायता मिलती है। कभी-कभी ध्वनि-परिवर्तन का कारण जानने के लिए भी मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है। भाषा की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक रूप की जानकारी में भी बाल-मनोविज्ञान तथा अविकसित लोगों का मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है।

मनोविज्ञान को भी अपनी चिकित्सा-पद्धति में रोगी की ऊलजलूल बातों का अर्थ जानने के लिए भाषा-विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है, अतः भाषा-विज्ञान की सहायता से एक मनोविज्ञानी रोगी की मनोग्रन्थियों का पता लगाने में सफल हो सकता है। भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण ही आजकल भाषा मनोविज्ञान या साइकोलिंगिंवस्टिक्स नामक एक नयी अध्ययन-पद्धति का विकास हो रहा है।

शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा मुख से निकलने वाली ध्वनि को कहते हैं, अतः भाषा-विज्ञान में हवा भीतर से कैसे चलती है, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री, नासिकाविवर, कौवा, तालु, दाँत, जीभ, ओंठ, कंठ, मूर्द्धा तथा नाक के कारण उसमें क्या परिवर्तन होते हैं तथा कान द्वारा कैसे ध्वनि ग्रहण की जाती है, इन सबका अध्ययन करना पड़ता है। इसमें शरीर-विज्ञान ही उसकी सहायता करता है। लिखित भाषा का ग्रहण आँख द्वारा होता है और इस प्रक्रिया का अध्ययन भी भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत ही होता है। इसके लिए भी उसे शरीर विज्ञान का ऋणी होना पड़ता है।

भूगोल और भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान और भूगोल का भी-गहरा सम्बन्ध है। कुछ लोगों के अनुसार किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों का उसकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी स्थान में बोली जाने वाली भाषा में वहाँ के पेड़-पौधे, पक्षी, जीव-जन्तु एवं अन्न आदि के लिए शब्द अवश्य मिलते हैं, परन्तु यदि उनमें से किसी की समाप्ति हो जाए तो उसका नाम वहाँ की भाषा से भी जुदा हो जाता हैं। 'सोमलता' शब्द का प्रयोग आज हमारी भाषा में नहीं होता। इस लोप का कारण सम्भवतः भौगोलिक ही है। किसी स्थान में एक भाषा का दूर तक प्रसार न होना, भाषा में कम विकास होना तथा किसी स्थान में बहुत सी बोलियों का होना भी भौगोलिक परिस्थितियों का ही परिणाम होता है। दुर्गम पर्वतों पर रहने वाली जातियों का परस्पर कम सम्पर्क होने के कारण उनकी बोली प्रसार नहीं कर पाती। नदियों के आर-पार रहने वाले लोगों की बोली-भाषा सामान्य भाषा से हट कर भिन्न होती है।

देशों, नगरों, नदियों तथा प्रान्तों आदि के नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने में भूगोल बड़ी मनोरंजक सामग्री प्रदान करता है।

अर्थ-विचार के क्षेत्र में भी भूगोल भाषा-विज्ञान की सहायता करता है। 'उष्ट्र' का अर्थ भैंसा से ऊँट कैसे हो गया तथा 'सैंधव' का अर्थ घोड़ा और नमक ही क्यों हुआ, आदि समस्याओं पर विचार करने में भी भूगोल सहायता करता है। भाषा-विज्ञान की एक शाखा भाषा-भूगोल की अध्ययन-पद्धति तो ठीक भूगोल की ही भाँति होती है। इसी प्रकार किसी स्थान के प्रागैतिहासिक काल के भूगोल का अध्ययन करने में भाषा-विज्ञान भी पर्याप्त सहायक होता है।

इतिहास और भाषा-विज्ञान

इतिहास का भी भाषा-विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास के तीन रूपों (1) राजनीतिक इतिहास, (2) धार्मिक इतिहास, (3) सामाजिक इतिहास-को लेकर यहाँ भाषा-विज्ञान से उसका सम्बन्ध दिखलाया जा रहा है-

(क) **राजनीतिक इतिहास**–किसी देश में अन्य देश का राज्य होना उन दोनों ही देशों की भाषाओं को प्रभावित करता है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के कई हजार शब्दों का प्रवेश तथा अंग्रेजी भाषा में कई हजार भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रवेश भारत की राजनीतिक पराधीनता या दोनों देशों के परस्पर सम्बन्ध का परिणाम है। हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली शब्दों के आने के कारणों को जानने के लिए भी हमें राजनीतिक इतिहास का सहारा लेना पड़ता है।

(ख) **धार्मिक इतिहास**–भारत में हिन्दी-उर्दू-समस्या धर्म या साम्प्रदायिकता की ही देन है। धर्म का भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म का रूप बदलने पर भाषा का रूप भी बदल जाता है। यज्ञ का लोक-धर्म से उठ जाना ही वह कारण है, जिससे आज हमारी भाषा से यज्ञ-सम्बन्धी अनेक शब्दों का लोप हो चुका है। व्यक्तियों के नामों पर भी धर्म का प्रभाव पड़ता है। हिन्दू की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता होगी तो एक मुसलमान की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता देखने को मिलेगी। इसी प्रकार बहुत-सी प्राचीन धार्मिक गुत्थियों को भाषा-विज्ञान की सहायता से सुलझाया जा सकता है। धर्म के बल पर कभी-कभी कोई बोली अन्य बोलियों को पीछे छोड़कर विशेष महत्त्व पा जाती है। मध्य युग में अवधी और ब्रज के विशेष महत्त्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही प्राप्त होता है।

(ग) **सामाजिक इतिहास**–सामाजिक व्यवस्था तथा हमारी परम्पराएँ भी भाषा को प्रभावित करती हैं। भाषा की सहायता से किसी जाति के सामाजिक इतिहास का ज्ञान भी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय समाज में पारिवारिक सम्बन्धों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसलिए भारतीय भाषाओं में, माँ-बाप, बहन-भाई, चाचा, मौसा, फूफा, बुआ, मौसी, साला, बहनोई, साढ़ू, साली, सास-ससुर जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु यूरोपीय समाज में इन सभी सम्बन्धों के लिए केवल अंकल, आंट, मदर, फादर, ब्रदर, सिस्टर जैसे शब्द ही हैं जिनमें कुछ 'इन लॉ' आदि शब्द जोड़ जाड़ कर अभिव्यक्ति की जाती है। अतः भाषा-विज्ञान के अध्ययन में सामाजिक इतिहास पूरी सहायता करता है।

इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में शब्दों का किस प्रकार निर्माण हो जाया करता है इस पर भाषा-विज्ञान प्रकाश डालता है। किसी समाज की भाषा में मिलने वाले शब्दों से उसकी समाज-व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है। समाज में संयुक्त-परिवार व्यवस्था है, विशाल कुटुम्ब व्यवस्था है या एकल परिवार व्यवस्था है इस बात का उसमें व्यवहार किए गए शब्दों से पता चलता है।

भाषा विज्ञान तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्र

भाषा विज्ञान के अध्ययन में तर्कशास्त्र, भौतिक शास्त्र एवं मानव-शास्त्र जैसे अन्य ज्ञान के क्षेत्र भी बड़ी सहायता पहुंचाते हैं। मनुष्य में अनेक प्रकार के अंधविश्वास घर कर लेते हैं, जिनका उसकी भाषा पर प्राभाव पड़ता है। भारतीय सामज में स्त्रियाँ अपने पति का नाम घुमा-फिराकर लेती है, सीधा-स्पष्ट नहीं। रात्रि में विशाल कीड़ों का नाम नहीं लिया जाता है। वे अपने लड़के का नाम मांगे (मांगा हुआ), छेदी (उसकी नाक छेद कर), बेचू (उसे दो-चार पैसे में किसी के हाथ बेच कर), घुरहू (कूड़ा), कतवारू (कूड़ा) अलिचार (कूड़ा) या लेंढ़ा (रड्डी), आदि रखते हैं। अंधविश्वासों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी सामाजिक-मनोविज्ञान से सम्बद्ध गुत्थियों के स्पष्टीकरण के लिए मानव-विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं का सहारा लेना पड़ता है।

इस प्रकार ज्ञान के अनेक क्षेत्र- संस्कृति-अध्ययन, शिक्षाशास्त्र, सांख्यिकी, पाठ-विज्ञान - आदि भाषा विज्ञान से गहरा सम्बन्ध रखते हैं।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र

मानव की भाषा का जो क्षेत्र है वही भाषा-विज्ञान का क्षेत्र है। संसार भर के सभ्य-असभ्य मनुष्यों की भाषाओं और बोलियों का अध्ययन भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान केवल सभ्य-साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं करता, अपितु असभ्य-बर्बर-असाहित्यिक बोलियों का, जो प्रचलन में नहीं है, अतीत के गर्व में खोई हुई हैं उन भाषाओं का भी अध्ययन इसके अन्तर्गत होता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के विभाग

विषय-विभाजन की दृष्टि से भाषा विज्ञान को भाषा-संरचना (व्याकरण) एवं 'अर्थ का अध्ययन' में बांटा जाता है। इसमें भाषा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

से विश्लेषण और वर्णन करने के साथ ही विभिन्न भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। भाषा विज्ञान के दो पक्ष हैं- तात्त्विक और व्यावहारिक।

तात्त्विक भाषा विज्ञान में भाषा का ध्वनि सम्भार (स्वर विज्ञान और ध्वनि विज्ञान (फोनेटिक्स)), व्याकरण (वाक्य विन्यास व आकृति विज्ञान) एवं शब्दार्थ (अर्थ विज्ञान) का अध्ययन किया जाता है।

व्यावहारिक भाषा विज्ञान में अनुवाद, भाषा शिक्षण, वाक-रोग निर्णय और वाक-चिकित्सा, इत्यादि आते हैं।

इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान का ज्ञान-विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं के साथ गहरा संबंध है। इससे समाजभाषा विज्ञान, मनोभाषा विज्ञान, गणनामूलक भाषा विज्ञान, आदि इसकी विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। भाषा विज्ञान के गौण क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

1. **भाषा की उत्पत्ति–** भाषा-विज्ञान का सबसे प्रथम, स्वाभाविक, महत्त्वपूर्ण किन्तु विचित्र प्रश्न भाषा की उत्पत्ति का है। इस पर विचार करके विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों का निर्माण किया है। यह एक अध्ययन का रोचक विषय है, जो भाषा के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है।

2. **भाषाओं का वर्गीकरण–** भाषा के प्राचीन विभाग (वाक्य, रूप, शब्द, ध्वनि एवं अर्थ) के आधार पर हम संसार भर की सभी भाषाओं का अध्ययन करके उन्हें विभिन्न कुलों या वर्गों में विभाजित करते हैं।

3. अन्य क्षेत्र–भाषा के अध्ययन के भाषा-भूगोल, भाषा-कालक्रम विज्ञान, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज, लिपि-विज्ञान, भाषा की प्रकृति, भाषा के विकास के कारण आदि अन्य अनेक क्षेत्र हैं।

तात्त्विक भाषा विज्ञान के प्रक्षेत्र

स्वन विज्ञान– मानव के स्वर-यंत्र द्वारा उत्पन्न स्वनियों का अध्ययन।

स्वनिमविज्ञान– किसी भाषा के स्वनिमों का अध्यन।

रूप विज्ञान– शब्दों के आन्तरिक संरचना का अध्ययन।

वाक्यविन्यास या वाक्य विज्ञान– वाक्य का निर्माण करने वाली शाब्दिक इकाइयों के बीच परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन।

अर्थ विज्ञान– शब्दों एवं कथनों के अर्थ का अध्ययन।

शैली

प्रायोगिक भाषा विज्ञान

वाक्य- विज्ञान–भाषा में सारा विचार-विनिमय वाक्यों के आधार पर किया जाता है। भाषा-विज्ञान के जिस विभाग में इस पर विचार किया जाता है, उसे वाक्य-विचार या वाक्य-विज्ञान कहते हैं। इसके तीन रूप हैं-

(1) वर्णनात्मक।

(2) ऐतिहासक वाक्य-विज्ञान।

(3) तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान।

वाक्य-रचना का सम्बंध बोलनेवाले समाज के मनोविज्ञान से होता है। इसलिए भाषा-विज्ञान की यह शाखा बहुत कठिन है।

रूप-विज्ञान–वाक्य की रचना पदों या रूपों के आधार पर होती है। अत: वाक्य के बाद पद या रूप का विचार महत्त्वपूर्ण हो जाता है। रूप-विज्ञान के अन्तर्गत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि उन सभी उपकरणों पर विचार करना पड़ता है, जिनसे रूप बनते हैं।

शब्द-विज्ञान–रूप या पद का आधार शब्द है। शब्दों पर रचना या इतिहास इन दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। किसी व्यक्ति या भाषा का विचार भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। कोश-निर्माण तथा व्युत्पत्ति-शास्त्र शब्द-विज्ञान के ही विचार-क्षेत्र की सीमा में आते हैं। भाषा के शब्द समूह के आधार पर बोलने वाले का सांस्कृतिक इतिहास जाना जा सकता है।

ध्वनि-विज्ञान–शब्द का आधार है ध्वनि। ध्वनि-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का अनेक प्रकार से अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत ध्वनि-शास्त्र एक अलग से उपविभाग है, जिसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंगों-मुख-विवर, नासिका-विवर, स्वर तंत्री, ध्वनि यंत्र के साथ-साथ सुनने की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के दो रूप हैं-ऐतिहासिक और दूसरा तुलनात्मक। ग्रिम नियम का सम्बन्ध इसी से है।

अर्थ-विज्ञान–वाक्य का बाहरी अंग ध्वनि पर समाप्त हो जाता है यह भाषा का बाहरी कलेवर है इसके आगे उसकी आत्मा का क्षेत्र प्रारम्भ होता है जिसे हम अर्थ कहते हैं। अर्थ-रहित शब्द आत्मारहित शरीर की भाँति व्यर्थ होता है। अत: अर्थ भाषा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। अर्थ-विज्ञान में शब्दों के अर्थों का विकास तथा उसके कारणों पर विचार किया जाता है।

भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ अथवा प्रकार

किसी भी अध्ययन को हम वैज्ञानिक तब कहते हैं, जब उसमें एक निश्चित प्रक्रिया को अपना कर चलते हैं। भाषा विज्ञान भी किसी भाषा के कारण-कार्यपरक युक्तिपूर्ण विवेचन-विश्लेषण के लिए कुछ निश्चित प्रक्रियाओं में बंध कर चलता है। इन्हीं प्रक्रियाओं के आधार पर अभी तक भाषा-विज्ञान के पाँच प्रकार के अध्ययन हमें प्राप्त होते हैं-

सामान्यतया भाषा का अध्ययन निम्नांकित दृष्टियों से किया जाता है:

वर्णनात्मक पद्धति

वर्णात्मक पद्धति द्वारा एक ही काल की किसी एक भाषा के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। इसके लिए इसमें उन सिद्धांतों पर प्रकाश डाला जाता, जिनके आधार पर भाषा-विशेष की रचनागत विशेषताओँ को स्पष्ट किया जा सके। ध्यातव्य है कि इस पद्धति में एक साथ विभिन्न कालों को भाषा का समावेश नहीं किया जा सकता, क्योंकि हर काल की भाषा के विश्लेषण के लिए पृथक्-पृथक् सिद्धांतों का प्रयोजन पड़ेगा।

पाणिनि न केवल भारत के, अपितु संसार के सबसे बड़े भाषा विज्ञानी हैं, जिन्होंने वर्णनात्मक रूप में भाषा का विशद एवं व्यापक अध्ययन किया। कात्यायन एवं पतंजलि भी इसी कोटि में आते हैं। ग्रीक विद्वानों में थ्रैक्स, डिस्कोलस तथा इरोडियन ने भी इस क्षेत्र में उल्लेख्य कार्य किया था।

पाणिनि से पूर्ण प्रभावित होकर ब्लूमफील्ड (अमेरिका) ने सन् 1932 ई. में 'लैंग्वेज' नामक अपना ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर वर्णनात्मक भाषा विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इधर पश्चिमी देशों - विशेषकर अमेरिका में वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का आशातीत विकास हुआ है।

ऐतिहासिक पद्धति या कालक्रमिक पद्धति

किसी भाषा में विभिन्न कालों में परिवर्तनों पर विचार करना एवं उन परिवर्तनों के सम्बन्ध में सिद्धांतो का निर्माण ही ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का उद्देश्य होता है। वर्णनात्मक पद्धति का मूल अन्तर यह है कि वर्णनात्मक पद्धति जहाँ एककालिक है, वहाँ ऐतिहासिक पद्धति द्विकालिक।

संकृत भाषा की प्राचीनता ने ऐतिहासिक पद्धति की ओर भाषा विज्ञानियों का ध्यान आकृष्ट किया। 'फिलॉलोजी' का मुख्य प्रतिपाद्य प्राचीन ग्रन्थों की

भाषाओं का तुलनातमक अध्ययन ही था। मुख्यत: संस्कृत, जर्मन, ग्रीक, लॉतिन जैसी भाषाओं पर ही विद्वानों का ध्यान केन्द्रित रहा। फ्रेडरिक औगुस्ट वुल्फ ने सन् 1777 ई. में ही ऐतिहासिक पद्धति की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था।

वस्तुत:, किसी भी भाषा के विकासात्मक रूप को समझने के लिए ऐतिहासिक पद्धति का सहारा लेंना ही पड़ेगा। पुरानी हिन्दी अथवा मध्यकालीन हिन्दी और आधुनिक हिन्दी में क्या परिवर्तन हुआ है, इसे ऐतिहासिक पद्धति द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है।

तुलनात्मक पद्धति

तुलनात्मक पद्धति द्वारा दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है। इसे मिश्रित पद्धति भी कह सकते हैं, क्योंकि विवरणात्मक पद्धति तथा ऐतिहासिक पद्धति दोनों का आधार लिया जाता है। विवरण के लिए किसी एक काल को निश्चित करना होता है और तुलना के लिए कम-से-कम दो भाषाओं की अपेक्षा होती है। इस प्रकार, तुलनात्मक पद्धति को वर्णनात्मक पद्धति और ऐतिहासिक पद्धति का योग कहा जा सकता है।

तुलनात्मक पद्धति किन्हीं दो भाषाओं पर लागू हो सकती है। जैसे– भारतीय भाषाओं - भोजपुरी आदि में भी परस्पर तुलना की जाती है या फिर हिन्दी-अंगरेजी, हिन्दी-रूसी, हिन्दी-फारसी का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। अर्थात् इसमें क्षेत्रगत सीमा नहीं है।

विलियम जोन्स (1746-1794तक), फ्रांस बॉप्प (1791-1867), मैक्समूलर (1823-1900), कर्टिअस (1820-1885), औगुस्ट श्लाइखर (1823-1868) प्रभृति विद्वानों ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। पर, अबतक तुलनात्मक भाषा विज्ञान में उन सिद्धांतों की बड़ी कमी है, जिनके आधार पर दो भिन्न भाषाओं का वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं बन सका।

संरचनात्मक (गठनात्मक) पद्धति

संरचनात्मक पद्धति वर्णनात्मक पद्धति की अगली कड़ी है। अमेरिका में इस पद्धति का विशेष प्रचार हो रहा है। इसमें यांत्रिक उपकरणों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है, जिससे अनुवाद करने में विशेष सुविधा होगी। जैलिग

हैरिस ने 'मेथेड्स इन स्ट्रक्चरल लिंग्युस्टिक्स' नामक पुस्तक लिखकर इस पद्धति को विकसित किया।

भाषा विज्ञान का प्रयोगात्मक पक्ष

विज्ञान की अन्य शाखाओं के समान भाषा विज्ञान के भी प्रयोगात्मक पक्ष हैं, जिनके लिये प्रयोग की प्रणालियों और प्रयोगशाला की अपेक्षा होती है। भिन्न-भिन्न यांत्रिक प्रयोगों के द्वारा उच्चारणात्मक स्वन विज्ञान, भौतिक स्वन विज्ञान और श्रवणात्मक स्वन विज्ञान का अध्ययन किया जाता है। इसे प्रायोगिक स्वन विज्ञान, यांत्रिक स्वन विज्ञान या प्रयोगशाला स्वन विज्ञान भी कहते हैं। इसमें दर्पण जैसे सामान्य उपकरण से लेकर जटिलतम वैद्युत उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। परिणामस्वरूप भाषा विज्ञान के क्षेत्र में गणितज्ञों, भौतिक शास्त्रियों और इंजीनियारों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित हो गया है। कृत्रिम तालु और कृत्रिम तालु प्रोजेक्टर की सहायता से व्यक्ति विशेष के द्वारा उच्चारित स्वनों के उच्चारण स्थान की परीक्षा की जाती है। कायमोग्राफ स्वानों का घोषणत्व और प्राणत्व निर्धारण करने अनुनासिकता और कालमात्र जानने के लिये उपयोगी है। लैरिंगो स्कोप से स्वरयंत्र (काकल) की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। एंडोस्कोप लैरिंगोस्कोप का ही सुधरा रूप है। ऑसिलोग्राफ की तरंगें स्वनों के भौतिक स्वरूप को पर्दे पर या फिल्म पर अत्यंत स्पष्टता से अंकित कर देती है। यही काम स्पेक्टोग्राफ या सोनोग्राफ द्वारा अधिक सफलता से किया जाता है। स्पेक्टोग्राफ जो चित्र प्रस्तुत करता है उन्हें पैटर्न प्लेबैक द्वारा फिर से सुना जा सकता है। स्पीचस्ट्रेचर की सहायता से रिकार्ड की हुई सामग्री को धीमी गति से सुना जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे बड़े यंत्र हैं, जिनसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में पर्याप्त सहायता ली जा रही है।

फ्रांसीसी भाषा वैज्ञानिकों में रूइयो ने स्वन विज्ञान के प्रयोगों के विषय में ग्रंथ लिखा था। लंदन में प्रो. फर्थ ने विशेष तालुयंत्र का विकास किया। स्वरों के मापन के लिये जैसे स्वरत्रिकोण या चतुष्कोण की रेखाएँ निर्धारित की गई हैं, वैसे ही इन्होंने व्यंजनों के मापन के लिये आधार रेखाओं का निरूपण किया, जिनके द्वारा उच्चारण स्थानों का ठीक ठीक वर्णन किया जा सकता है। डेनियल जांस और इडा वार्ड ने भी अंग्रेजी स्वन विज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषाओं के स्वन विज्ञान पर काम करने वालों में क्रमशः आर्मस्ट्राँग, बिथेल और बोयानस मुख्य हैं। सैद्धांतिक और प्रायोगिक स्वन

विज्ञान पर समान रूप से काम करनेवाले व्यक्तियों में निम्नलिखित मुख्य हैं– स्टेटसन (मोटर फोनेटिक्स 1928), नेगस (द मैकेनिज्म ऑव दि लेरिंग्स,1919) पॉटर, ग्रीन और कॉप (विजिबुल स्पीच), मार्टिन जूस (अकूस्टिक फोनेटिक्स, 1948), हेफनर (जनरल फोनेटिक्स 1948), मौल (फंडामेंटल्स ऑव फोनेटिक्स, 1963) आदि।

इधर एक नया यांत्रिक प्रयास आरंभ हुआ है, जिसका संबंध शब्दावली, अर्थतत्त्व तथा व्याकरणिक रूपों से है। यांत्रिक अनुवाद के लिए वैद्युत कम्प्यूटरों का उपयोग वैज्ञानिक युग की एक विशेष देन है। यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का अत्यंत रोचक और उपादेय विषय है।

1. भौगोलिक भाषा विज्ञान।
2. नृजातीय भाषा विज्ञान।
3. अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान।
4. विस्तृत विवेचन के लिये अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान देखें।

संचनात्मक पद्धति

जिस पद्धति में भाषा की संरचना के आधार पर अध्ययन किया जाए उसे भाषा-अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति कहते हैं। भाषा-अध्ययन की यह पद्धति भाषा की विभिन्न इकाइयों के सूक्ष्म चिन्तन पर आधारित है। इसमें भाषा का विवेचन और विश्लेषण संगठनात्मक दृष्टिकोण से करते हैं। भाषा के संरचनात्मक अध्ययन में पारस्परिक सम्बद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वर्णनात्मक भाषा-अध्ययन में भी यत्र-तत्र संरचनात्मक रूप उभर आता है। वर्णनात्मक पद्धति और संरचनात्मक पद्धति के अध्ययन में विशिष्ट अन्तर यह है कि वर्णनात्मक पद्धति में भाषा की इकाइयों का अध्ययन एकाकी रूप में किया जाता है, जबकि संरचनात्मक अध्ययन में विभिन्न इकाइयों के पारम्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया जाता है, यथा-''काम'' शब्दके संरचनात्मक अध्ययन में इसके विभिन्न ध्वनि-चिह्नों–क्. आ. म्. अ के लिखित तथा विभिन्न ध्वनियो क् आ. म् के उच्चरित रूप पर चिन्तन करते हैं। इस प्रकार शब्द-संरचना के अध्ययन में उससे सम्बन्धित ध्वनियों के साथ वाक्यों में प्रयोग की स्थिति पर भी विचार करते हैं। इससे उक्त शब्द के लिखित तथा उच्चरित रूपों का सुस्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। वर्तमान समय में भाषा-अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति पर विशेष बल दिया जा रहा है।

भाषा संरचना क्या है

भाषा–संरचना का मूलाधार संरचनात्मक पद्धति है, जिस प्रकार भवन रचना में ईट, सीमेंट, लोहा, शक्ति अर्थात्मजदूर और कारीगर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा–संरचना में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, प्रोक्ति औरअर्थ की अपनी–अपनी भूमिका होती है।

ध्वनि –संरचना

सामान्यत: किन्हीं दो या दो से अधिक वस्तुओं के आपस में टकराने से वायु में कम्पन होता है। जब यह कम्पन कानों तक पहुँचता है, तो इसे ध्वनि कहते हैं। भाषा विज्ञान में मानव के मुखांगों से निकलीवनियों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण इकाई है। यदि सभीभाषा की ध्वनियों में सैद्धान्तिक रूप से कुछ समानताएँ होती हैं तो प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं।

वर्गीकरण

भाषा–ध्वनियों का अध्ययन करते हैं, तो दो मुख्य वर्ग सामने आते हैं–स्वर और व्यंजन।1. स्वर–भाषा में कुछ ऐसी ध्वनियाँ होती हैं, जिनके उच्चारण में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता अर्थात् इनके उच्चारण में फेफड़े से आने वाली वायु अबाध गति से बाहर आती है और इनका उच्चारण जितनी देर चाहें कर सकते हैं।

विभिन्न भाषाओं में स्वर ध्वनियों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है, यथा–वर्तमान समय में हिन्दीकी स्वर ध्वनियाँ हैं–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

विभिन्न भाषाओं में स्पष्ट–ध्वनियों के स्थान–व्यवस्था में भी भिन्नता है। किसी भाषा में समस्तवनियाँ पूर्ववर्ती या परवर्ती एक स्थान पर व्यवस्थित होती हैं तो किसी भाषा में व्यंजन ध्वनियोके मध्य व्यवस्थित होती है।हिन्दी की सभी स्वर वनियाँ ध्व्यंजन से पूर्व एक स्थान पर व्यवस्थित हैं–अ, आ, इ, ई, उ,ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।अंग्रेजी में स्वरों की व्यवस्था व्यंजनों के मध्य है–

2. व्यंजन–जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वर ध्वनियों का सहयोग अनिवार्य हो और जिनके उच्चारण में फेफड़े से आनेवाली वायु मुख के किसी भाग में अल्पाधिक रूप से अवरुद्ध होने के कारण घर्षण के साथ बाहर आए,

उन्हें व्यंजन ध्वनि कहते हैं। हिन्दी में व्यंजन ध्वनियों को स्वर के बाद स्थान दिया गया है, जबकि अंग्रेजी में स्वर ध्वनि के साथ मिश्रित रूप में।

हिन्दी में कुछ व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग स्वर के रूप में भी होता है। इन्हें अर्ध स्वर कहते हैं–यथा–य्, व्।

हिन्दी में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र चिन्हों की व्यवस्था है, यथा–प्रत्येक वर्ग की दूसरी और चौथी ध्वनियाँ–क वर्ग–ख, घ च वर्ग–छ, झ ट वर्ग–ठ, द त वर्ग–थ, ध प वर्ग–फ, भ।

बलाघात

भाषा में विभिन्न ध्वनियों के एक साथ प्रयोग होने पर भी उनके उच्चारण में प्रयुक्तबल में पर्याप्त भिन्नता होती है। जब किसी ध्वनि पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होता है, तो उसे बलाघात कहते हैं, यथा–'आम' शब्द में "आ" और "म" दो ध्वनियाँ हैं। "आ" पर 'म' की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है।

हिन्दी ध्वनियों में बलाघात के विषय में यह ध्यातव्य है कि यह प्रभाव सदा स्वर पर ही होता है।जब एक वाक्य में किसी शब्द की सभी ध्वनियाँ अन्य शब्दों की ध्वनियों की अपेक्षा अधिक सशक्तरूप से प्रयुक्त होती हैं, तो उसे शब्द बलाघात कहते हैं, यथा–(क) मुझे एक रंगवाली कलम चाहिए।(ख) मुझे एक रंगंगंगवाली कलम चाहिए।यहाँ 'क' वाक्य में 'एक' शब्द की ध्वनियों पर बलाघात है, तो 'ख' वाक्य में 'रंगवाली' शब्द की ध्वनियों पर। इस प्रकार दोनों वाक्यों के अर्थ में भिन्नता आ गई है।(ग) सन्धि कभी-कभी दो भाषिक इकाइयाँ मिलकर एक हो जाती हैं, ऐसे ध्वनि परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। प्रत्येक भाषा के सन्धि-नियमों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी में कई प्रकारकी सन्धियाँ मिलती हैं, यथा–1. स्वीकरण–हिन्दी तद्भव शब्दों में यह प्रक्रिया मिलती है–आप. ना (अ झ अ) = अपनाआधा. खिला (आ झ अ) = अधखिलाभीख. आरी (ई झ इ) = भिखारी2. दीघ्रीकरण रूमुख्य. अर्थ (अ. अ = आ) = मुख्यार्थकवि. इन्द्र (इ. इ = ई) = कवीन्द्र3. घोषीकरण रूडाक. घर (क झ घ) = डाकघरधूप. बत्ती (प झ ब) = धूपबत्ती4. लोपघोड़ा. दौड़ (आ लोप) = घुड़दौड़पानी. घाट (ई और आ लोप) = पनघट5.आगम रूमूसल. धार (आ आगम) = मूसलाधारदीन. नाथ (आ आगम) = दीनानाथविश्व. मित्र (आ आगम) = विश्वामित्र

शब्द-संरचना

भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और सार्थक इकाई को शब्द की संज्ञा दी जाती है। शब्द-संरचना का अध्ययन उपसर्ग, प्रत्यय, समास तथा पुनरुक्ति आदि रूपों से करते हैं।

उपसर्ग

उपसर्ग वह भाषिक इकाई है, जो शब्द के पूर्व में प्रयुक्त होती है, किन्तु इसका स्वतंत्रप्रयोग नहीं होता। ऐसी इकाई शब्द-संरचना का मुख्य आधार है। इसे मुख्यतः दो भागों में विभक्तकर सकते हैं।प्रथम–अपनी भाषा के उपसर्गय यथा–हिन्दी में उ, कु, स, सु आदि।अ–धर्म झ अधर्म, दुर–दिन झ दुर्दिनस–जीव झ सजीव, सु - गंध झ सुगंधद्वितीय–दूसरी भाषा के उपसर्गय यथाबे–बेकाम (फा. . हि.)बे–बेसिर (फा. . हि.)।प्रत्यय–निज भाषा के प्रत्ययकार = नाटककार, साहित्यकार, स्वर्णकारआनी = सेठानी, जेठानी, देवरानीता = सफलता, असफलता, सुन्दरताद्वितीय–कभी-कभी शब्द के साथ भिन्न भाषा के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं, यथा–ई = डाक्टरी-डॉक्टर (अंग्रेजी) . ई (हिन्दी प्रत्यय),दारी = वफादारी वफा (अ.) . दार (फा.),ची = संदूकची ख्संदूक (अ.) . ची (तु.),दार= जड़दार ख्जड़ (हिन्दी) . दार (फा.)।

समास

समास में दो शब्द जुड़कर एक सामासिक शब्द का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे रूप को समस्त पद या सामासिक पद कहते हैं, यथा–घोड़ों की दौड़ झ घुड़दौड.अर्थ संदर्भ से सामासिक शब्दों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–प्रथम वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ वही रह जाते हैं, जो समास के पूर्व होते हैं, यथा–माता और पिता = माता-पिता राजा और रानी = राजा-रानी।दूसरे वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ में भिन्नता आ जाती है, यथा–जल और वायु = जलवायु यहाँ विग्रह में पानी और हवा का ज्ञान होता है, सामासिक रूप में विशेष अर्थ वातावरण का ज्ञान होता है।

पद संरचना

जब शब्द वाक्य निर्माणार्थ निर्धारित व्याकरणिक क्षमता प्राप्त कर लेता है, तो उसे पद की संज्ञा दी जाती है। पद संरचना में शब्दों के विभिन्न

व्याकरणिक रूपों का अध्ययन किया जाता है। रूप संरचना, संज्ञा,सर्वमान, क्रिया आदि विभिन्न धरातलों पर करते हैं। संज्ञा के रूप संरचना में मुख्यत: वचन पर चिन्तन करते हैं, यथा–लड़का झ लड़के, लड़कों गुड़िया झ गुड़ियाँ, गुड़ियो, गुड़ियों।इस प्रकार विभिन्न प्रत्ययों के योग से पद संरचना होती है। सर्वनाम के साथ विभिन्न कारक चिह्नों के योग से पद संरचना सामने आती है, यथा–तुम झ तुमने, तुमसे, तुममें, तुमको आदि। आप झ आपने, आपसे, आपमें, आपको आदि।क्रिया पद की संरचना में भी प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है, यथा–चलना झ चलें, चलो, चलूँगा, चलिएगा, चलोगी आदि।दौड़ना झ दौड़े, दौड़ो, दौड़ूँगा, दौड़िएगा, दौड़ोगी आदि। यदा-कदा संयुक्त क्रिया के प्रयोग-आधार पर क्रिया-पद की विशेष संरचना होती है, यथा–आना झ आ जाओमारना झ मार डाला, मार दियाखाना झ खा लिया, खा डालाकांपना झ काँप उठा, काँप गया।

वाक्य संरचना

भाषा की स्वतंत्र, पूर्ण सार्थक सहज इकाई को वाक्य कहते हैं। वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से कमसे कम एक क्रिया का होना अनिवार्य है। वाक्य संरचना में मुख्यत: उद्देश्य तथा विधेय दो भाग होतेहैं, यथा–"उदित जा रहा है" में "उदित" उद्देश्य और "जा रहा है" विधेय है।वाक्य में उद्देश्य छिपा भी हो सकता है, यथा–जाओ झ (तुम) जाओ।खाइए झ (आप) खाइए।वाक्य की स्पष्ट संरचना का भावाभिव्यक्ति में विशेष महत्त्व होता है, यथा–रोको मत जाने दो, रोको मत जाने दो यहाँ प्रथम वाक्य संरचना में 'न रोको' की भावाभिव्यक्ति है, तो दूसरी वाक्य संरचना में 'रोकने' की।वाक्य को संरचनात्मक आधार पर सरल, संयुक्त और मिश्र वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। एक प्रकारके वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तित कर सकते हैं, यथा–निषेधात्मक वाक्य निर्माण प्रक्रिया–(क) वह योग्य है झ वह अयोग्य नहीं।(ख) तुम यहाँ से जाओ झ तुम यहाँ न रुको।

प्रोक्ति-संरचना

भाषा की महत्तम इकाई प्रोक्ति है। ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है, तो प्रोक्ति महत्तम और पूर्णअभिव्यक्ति करनेवाली इकाई है। वाक्य के द्वारा प्रोक्ति के समकक्ष अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है, यथा–

नितिन अच्छा लड़का है।

नितिन एम.ए. का छात्र है।

नितिन नियमित परिश्रम करता है।

नितिन को परीक्षा में प्रथम स्थान मिला

यहाँ नितिन के विषय में चार वाक्य दिए गए हैं। आपसी सम्बन्धों के अभाव में यहाँ पूर्ण, स्पष्ट औरसहज अभिव्यक्ति नहीं है। प्रोक्ति का रूप आते ही भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है–"नितिन अच्छा लड़का है। नियमित परिश्रम करने के कारण उसे एम.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान मिला।"यह एक लघु प्रोक्ति है। प्रोक्ति का स्वरूप तो उपन्यास या महाकाव्य के प्रथम शब्द से अन्तिम शब्द तकविस्तृत हो सकता है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में महाकाव्य की कल्पना की है। उन्होंने लिखा है–"वाक्योच्चयो महावाक्यम्" वाक्यों का उच्चय (उव्. चय) एक-दूसरे के ऊपर सदा रूप महाकाव्य है।इस प्रकार विभिन्न वाक्यों के एक-दूसरे के साथ समाहित होने के स्वरूप को वाक्य कहते हैं।

वाक्य या प्रोक्ति के विभिन्न घटकरूपी वाक्य भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हुए भी परस्पर मिलते हुए भी एकसमग्रता बोधक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार वाक्य से कहीं विस्तृत अर्थ और संरचना का ज्ञान होता है। इस प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न वाक्यों का समूह विशेष भाव और संरचना संदर्भ में भाषा की महत्तम इकाई का बोध कराता है। आचार्य विश्वनाथ ने इसे 'महावाक्य' कहा तो डॉ. रामचन्द्र वर्मा इसे 'वाक्यबन्ध' नाम अभिहित किया है। उनकी धारणा है कि यदि पद से विभिन्न पदों के योग पर पदबन्धबनाता है तो वाक्य को विभिन्न वाक्यों के योग से वाक्यबन्ध बनना चाहिए।

डॉ. भोलानाथ ने आचार्य विश्वनाथ के नाम पर सहमति व्यक्त करते हुए लिखा, "यह अजीब-सीबात है कि अपनी परम्परा के इस पुराने शब्द महाकाव्य को छोड़कर आज हमने इस अर्थ में एक नयाशब्द 'प्रोक्ति' बनाया है और स्वीकार किया है। ऐसा करके हमने "अपनी परम्परा के प्रति बहुत न्याय नहींकिया है।"

डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने प्रोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है, "अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण वाक्यों की सुसंबद्ध इकाई का नाम प्रोक्ति है।"

प्रोक्ति की संरचना, आन्तरिक अर्थ-संदर्भ और अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर इसे इन तत्त्व-रूपों में देख सकते हैं–

एकाधिकवाक्य।
आन्तरिक सुसंबद्धता या संबद्धता।
तत्त्व-सरणि:, वक्ता, श्रोता, वक्तव्य, संदर्भ, शैली प्रकार।
संप्रेषणीयता।
संरचना और संप्रेषणीयता में एक इकाई स्वरूप।

अर्थ -संरचना

ध्वनि, शब्द, पद और वाक्य आदि भाषा की शारीरिक इकाइयाँ हैं, तो अर्थ भाषा की आत्मा है। अर्थ को मुख्यत: सात वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–(क) मुख्यार्थ–पानी, गाय, विद्यालय आदि।(ख) लक्ष्यार्थ–वह तो गधा है।(ग) व्यंजनार्थ–यहाँ परम्परा से अर्थ जोड़ते हैं, यथा–गंगा जल (पवित्रता का प्रतीक)(घ) सामाजिक–"टल्वन"ठ शब्द के लिए हिन्दी में विभिन्न संदर्भों के लिए तू, तुम और आपका प्रयोग करते हैं।तू–(छोटे के लिए, गुस्से में) तू जा, तू खा।तुम–(बराबर के लिए) तुम चलो, तुम लिखो। आप–(आदर सूचक, बड़ों के लिए) आप चलिए, आप लिखिए।(ड़) बलात्मक–प्रमोद रोटी खाएगा, रोटी खाएगा प्रमोद।(च) शैलीय अर्थ–(हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी शैली) आप बैठिए, आप तशरीफ रखिए, आप विराजिए।पर्यायता–कुछ शब्दों को पर्यायी या समानार्थी शब्द कहते हैं। वास्तव में पर्यायी शब्दों के दो वर्ग हैं–(क) पूर्ण पर्यायी–क्वह झ कुत्ता, डंद झ आदमी।(ख) आंशिक पर्यायी–भीगा-गीला, छोटा-नाटा, सुन्दर-अच्छा, बढ़िया-स्वादिष्ट।विलोम–विलोम अर्थ अभिव्यक्ति हेतु मूल यौगिक रूपों में शब्दों का निर्माण करता है।मूलरू जड़-चेतन, सुख-दु:ख, दिन-रात आदि।यौगिक–इसमें कभी उपसर्ग लगाते हैं कभी प्रत्यययय यथा–शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित (उपसर्ग-आधार), कृतज्ञ-कृतन (प्रत्यय-आधार)अर्थ-संरचना में समास की भी विशेष भूमिका होती है, यथा–दुआ-बद्दुआ, स्वदेश-परदेश (विदेश)स्वतंत्र-परतंत्र, बुद्धिमान-बुद्धिहीन

इसी प्रकार अनेकाथ्री शब्दों की संरचना में भी विविधता देखी जा सकती है, जो भाषा-संरचना का महत्त्वपूर्णअंश है।

भाषा पर विचार करते समय भाषा सम्बन्धी बहुत से पहलुओं पर विचार किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि समस्त पहलुओं से विचार करने वाली अध्ययन शाखाओं को भाषा विज्ञान के प्रमुख विभागों अथवा भाषा विज्ञान की केन्द्रीय शाखाओं के रूप में विवेचित करना उपयुक्त नहीं है।

भाषागत प्रश्नों पर विचार करने वाले अध्ययन विभागों की तीन कोटियाँ बनाना उपयुक्त है–

(1) भाषा विज्ञान के प्रमुख विभाग अथवा भाषा विज्ञान की प्रमुख अथवा केन्द्रीय शाखाएँ –

(2) अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की शाखाएँ
अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान भाषा विज्ञान का अंत:विषय क्षेत्र है। इसके उदाहरण भाषा शिक्षण, अनुवाद विज्ञान, कोशकला अथवा कोश विज्ञान हैं।

(3) भाषा विज्ञान से सम्बद्ध अध्ययन विभाग

भाषा सम्बंधित समस्याओं का अध्ययन एवं उनका समाधान एक ओर भाषा विज्ञान करता है वहीं दूसरी ओर मनोविज्ञान, नृविज्ञान, समाज विज्ञान एवं साहित्य शास्त्र भी भाषा सम्बंधी समस्याओं पर विचार करता है। दूसरे शब्दों में जहाँ ज्ञानानुशासन के अन्य विषयों का ज्ञान भाषा वैज्ञानिक की भाषा अध्ययन में सहायता करता है, वहीं दूसरी ओर भाषा विज्ञान का ज्ञान शिक्षा शास्त्री, मना वैज्ञानिक, नृवैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक एवं साहित्य शास्त्री अथवा साहित्यालोचक की भाषा विषयक समस्याओं के समाधान में सहायता करता है। परस्पर के आदान-प्रदान के परिणाम स्वरूप ज्ञानानुशासन के नए विषयों का जन्म हुआ है। इन अध्ययन विभागों में प्रमुख हैं–

1. मनोभाषा विज्ञान
2. नृजातिभाषा विज्ञान अथवा मानवजाति-भाषा विज्ञान
3. समाजभाषा विज्ञान
4. शैली विज्ञान

बहुत से विद्वान इनको 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान' के ही अन्तर्गत परिगणित करते हैं। लेखक ने इनको 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान' से भिन्न कोटि के अन्तर्गत रखा है। इसका कारण निम्न है–

'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान' में भाषा विज्ञान का ज्ञान शिक्षाशास्त्री, कोशकार एवं अनुवादक आदि क्षेत्रों में कार्यरत विद्वानों के लिए सहायक होता है, किन्तु 'भाषा विज्ञान से सम्बद्ध अध्ययन विभागों' में एक ओर अन्य विषय भाषा वैज्ञानिक की सहायता करते हैं वहीं भाषा वैज्ञानिक अन्य विषयों के विद्वानों की सहायता करता है। इन विषयों का प्रादुर्भाव एकाधिक विषयों के परस्पर आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप हुआ है।

सम्प्रति भाषविज्ञान के प्रमुख विभाग अथवा भाषा विज्ञान की केन्द्रीय शाखाओं के सम्बन्ध में विचार किया जाएगा। भाषा के चार तत्त्व प्रमुख माने जाते रहे हैं–

1. ध्वनि अथवा वर्ण विचार
2. शब्द समूह
3. व्याकरण

अर्थ

भाषा में शब्द और अर्थ द्रव्य हैं। सामान्य व्यक्ति भाषा में शब्द और अर्थ को महत्व देता है। उसके द्वारा हम अपने भाव और विचार को व्यक्त करते हैं। भाषा-संरचना को महत्व देने वाले भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि भाषा में शब्द तो आसानी से परिवर्तित हो जाते हैं मगर भाषा-संरचना अपेक्षाकृत स्थिर तत्त्व है। जैसे– नदी के तट पानी की धारा के प्रवाह को मर्यादित रखते हैं, वैसे ही भाषा का व्याकरण भाषा को बाँधे रखता है। इन चार तत्त्वों में से शब्दों अथवा शब्द समूह की विवेचना कोशकार के अध्ययन सीमा में अधिक आती है, भाषा वैज्ञानिक की अभिरिचि भाषा के शब्दों की विवेचना की अपेक्षा उसके व्याकरण की विवेचना में अधिक होती है। इस दृष्टि से भाषा के दो पक्ष हैं।

(1) भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था अथवा भाषा व्यवस्था।

(2) शब्दावली।

अन्तर

भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था सम्बंध-दर्शी होती है इसके विपरीत भाषा की शब्दावली अर्थ-दर्शी होती है।

भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था आबद्ध, सीमित एवं नियंत्रित होती है जबकि भाषा की शब्दावली मुक्त, असीमित एवं अनियंत्रित होती है। भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था के आबद्ध एवं नियंत्रित होने के कारण भाषा वैज्ञानिक किसी भाषा के व्याकरणिक नियमों का निर्धारण कर पाता है। उसके नियम परिमित होते हैं। भाषा की शब्दावली के मुक्त एवं अनियंत्रित होने के कारण किसी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की संख्या अपरिमित होती है। किसी भाषा का कोई भी कोशकार यह दावा नहीं कर सकता कि उसने ऐसा कोश बना दिया है, जिसमें उस भाषा में प्रयुक्त होने वाले समस्त शब्द समाहित हैं।

भाषा की यह प्रकृति है कि उसमें परिवर्तन होता रहता है। भाषा-परिवर्तन के स्वरूप और उसके कारणों की विवेचना अन्यत्र की जाएगी। यहाँ केवल यह कहना यथेष्ट है कि भाषा के व्याकरणिक नियम अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं। उनके बदलाव की गति बहुत धीमी होती है। ये नियम भाषा को बाँधे रहने की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसके विपरीत भाषा में नए शब्दों का प्रवेश होता रहता है तथा शब्दों का लोप भी होता रहता है।

परम्परागत व्याकरण में विवेच्य भाषा की ध्वनियों, व्याकरण एवं अर्थ पर ही अधिक विचार किया जाता था। बीसवीं शताब्दी से पहले तक यूरोप की अधिकांश भाषाओं के परम्परागत व्याकरण इन भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप न होकर लैटिन एवं ग्रीक व्याकरणों का अनुगमन करके लिखे जाते थे। इसी प्रकार हिन्दी के परम्परागत व्याकरण भी संस्कृत व्याकरण को आदर्श मानकर लिखे गए। वर्णनात्मक एवं संरचनात्मक भाषा विज्ञान में ध्वनि, शब्द एवं अर्थ की अपेक्षा ध्वनिमों अथवा स्वनिमों का तथा व्याकरण के धरातल पर परम्परागत व्याकरण के मॉडल में विवेच्य भाषा के उदाहरणों को रखने के स्थान पर उस भाषा की अपनी विशिष्ट व्यवस्था और संरचना के नियमों का अध्ययन करना अभीष्ट हो गया। सूचक से प्राप्त भाषिक-सामग्री के विश्लेषण और वितरणगत स्थितियों के आधार पर व्यवस्थागत इकाइयों को जानने के लिए नई तकनीकों का विकास हुआ। ध्वनिमिक व्यवस्था में ध्वनि विवेचन का महत्व समाप्त हो गया। उसके स्थान पर स्वनिमिक अध्ययन किया जाने लगा। किसी भाषा में दो ध्वनियों का वितरण किस प्रकार का है - यह जानना महत्वपूर्ण हो गया। स्वनिमिक व्यवस्था के अध्ययन का मतलब पूरक वितरण एवं/अथवा स्वतंत्र परिवर्तन में वितरित ध्वनियों का एक वर्ग अर्थात् स्वनिम बनाना तथा व्यतिरेकी अथवा विषम वितरण में वितरित ध्वनियों को अलग अलग स्वनिम के रूप में रखने की पद्धति का विकास हुआ। व्याकरणिक अध्ययन का आरम्भ विवेच्य भाषा की उच्चार की लघुतम अर्थवान अथवा अर्थयुक्त इकाइयों की वितरणगत स्थितियों के आधार पर रूपप्रक्रियात्मक संरचना का अध्ययन होने लगा। सूचक से प्राप्त भाषिक सामग्री को प्रमाणिक मानकर उसके आधार पर भाषा के प्रत्येक स्तर पर विश्लेषण एवं वितरणगत तकनीकों के आधार पर भाषिक इकाइयों को प्राप्त करना तथा उसके बाद उनकी शृंखलाबद्ध संरचना के नियम बनाना लक्ष्य हो गया। हॉकिट ने भाषा की पाँच उप-व्यवस्थाओं में से तीन को केन्द्रीय के रूप में स्वीकार किया है–

व्याकरणीय व्यवस्था– रूपिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

स्वनिमिक व्यवस्था– ध्वनिग्रामों अथवा स्वनिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

रूपस्वनिमिक व्यवस्था– व्याकरणिक एवं स्वनिमिक व्यवस्थाओं को परस्पर संबद्ध करने वाली संहिता। (संधि व्यवस्था)। इन्हें केन्द्रीय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनका उस भाषेतर वातावरण से, जहाँ भाषा का प्रयोग किया जाता है, प्रत्यक्षत: कोई संबंध नहीं होता।

संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने इन तीन व्यवस्थाओं को ही केन्द्रक माना और ध्वनि एवं अर्थ को केन्द्रक परिधि से बाहर माना। संरचनावादी भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा विश्लेषण में अर्थ की उपेक्षा की किन्तु प्राग स्कूल के भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ का परित्याग नहीं किया। प्राग स्कूल के भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के आशय को महत्वपूर्ण माना। उनका विचार था कि भाषा का आशय उच्चार के संदर्भ से निर्दिष्ट होता है। यही भाषा का प्रकार्य है। शब्द के अर्थ का मतलब केवल शब्दकोशीय अर्थ ही नहीं है अपितु इसमें शैलीगत एवं संदर्भगत अर्थ भी समाहित हैं। इनकी मान्यता है कि भाषा का प्रयोक्ता अपने विचारों का सम्प्रेषण करता है। भाषा शून्य में नहीं, अपितु समाज में बोली जाती है। भाषा सामाजिक वस्तु है। सम्प्रेषण में वक्ता श्रोता को केवल तथ्यपरक सूचना ही नहीं देता। वह सम्प्रेषित तथ्य के बारे में अपने निजी भावों को भी प्रकट करता है। संदर्भ के बिना भाषा के वक्ता के आशय को नहीं समझा जा सकता। वक्ता अपनी बात से श्रोता में मनोनुकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न करना चाहता है। भाषा की व्यवस्था में सम्प्रेषण व्यापार के सभी प्रकार्यों का स्थान है। लंदन सम्प्रदाय के प्रोफेसर फर्थ के मत के अनुसार भाषा के विश्लेषण का उद्देश्य उसके अर्थ का विवरण प्रस्तुत करना है, जिससे हम भाषा के जीवंत प्रयोगों को आत्मसात कर सकें। भाषा एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया है। प्रोफेसर फर्थ का मत है कि भाषा अर्थपूर्ण भाषा-व्यवहार है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अर्थ के अध्ययन को भाषा विज्ञान की केन्द्रक परिधि में माना जाए अथवा नहीं - इस बारे में हमें विरोधी विचार मिलते हैं। संरचनात्मक भाषा विज्ञान और प्रोफेसर फर्थ के विचारों के अन्तर को इससे समझा जा सकता है कि जहाँ संरचनात्मक भाषा विज्ञान भाषा का अध्ययन 'अर्थ को बीच में लाए बिना' की मान्यता को ध्यान में रखकर करने जोर देता है वहीं इसके उलट प्रोफेसर फर्थ का विचार था कि भाषा का विश्लेषण हम जिस स्तर पर क्यों न करें, वह विश्लेषण प्रत्येक स्तर पर अर्थ का ही विश्लेषण है।

'अर्थ प्रसंगाश्रित सम्बंधों की संश्लिष्टता है और ध्वनि, व्याकरण, शब्दकोष निर्माण और अर्थ विज्ञान इनमें से प्रत्येक के अपने उचित संदर्भ में प्रसंगाश्रित सम्बंधों की संश्लिष्टता के घटक होते हैं।'

व्यवस्थागत प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान भाषा को सामाजिक संदर्भ में व्याख्यायित करने का सिद्धांत है। भाषा सामाजिक संदर्भानुसार परस्पर विनिमय होने वाले अर्थ को व्यक्त करने का एक संसाधन है। इसी कारण व्यवस्थागत प्रकार्यात्मक व्याकरण भाषा के अर्थ को विवेच्य मानता है। भाषा के प्रयोक्ता भाषा का प्रयोग सामाजिक संदर्भगत अर्थ को व्यक्त करने के लिए करते हैं। इसी कारण हैलिडे का कथन है कि भाषा का प्रयोक्ता किन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भाषा का प्रयोग एक संसाधन के रूप में कर रहा है – इस पर भाषा वैज्ञानिक को अपनी दृष्टि केन्द्रित रखनी चाहिए। हैलिडे का स्पष्ट विचार है कि भाषा का महत्व उसके सामाजिक उपयोग में निहित है और इस पर अनिवार्य रूप से उपभोक्ता की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। हैलिडे ने प्रोफेसर फर्थ के विचारों को आगे बढ़ाने का काम किया। उन्होंने अर्थ के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियों तथा संदर्भों को भी समाविष्ट किया। हैलिडे ने माना कि भाषा के अध्ययन में संदर्भ प्रमुख है, जो भाषा को सामाजिक परिस्थितियों से जोड़ने का काम करता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वर्णनात्मक एवं संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिक भाषविज्ञान के विभागों अथवा भाषा विज्ञान की इन शाखाओं को प्रधान शाखाओं एवं गौण शाखाओं के रूप में विभाजित करते थे तथा प्रधान शाखाओं के अन्तर्गत भाषा के अलग-अलग स्तरों पर प्राप्त संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं का विश्लेषण एवं विवेचन करते थे, जबकि गौण शाखाओं के अन्तर्गत 'ध्वनि' एवं 'अर्थ' का अध्ययन, भाषागत सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण तथा संसार की भाषाओं के वर्गीकरण से सम्बन्धित विवेचन करते थे। प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान के विकास के बाद अर्थ का अध्ययन केन्द्रक हो गया। संरचनात्मक भाषा विज्ञान एवं प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान की विवेचना से यह स्पष्ट है कि संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ की उपेक्षा की मगर प्रकार्यात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने यह माना कि अर्थ की व्याख्या एवं सहारे के बिना व्याकरणिक पद की प्रकार्यात्मक भूमिका को नहीं समझा जा सकता। यह कहा जा चुका है कि भाषा मानवीय अनुभवों का प्रतिपादन करता है। मानवीय अनुभवों का संसार अपरिमित है। इस कारण भाषा में एक कथ्य के

लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। एक शब्द के संदर्भ के अनुसार अनेक अर्थ होते हैं। एक शब्द के अनेक प्रयोग होते हैं। भाषा का प्रयोगकर्ता अपनी भाषा में उपलब्ध विकल्पों में से संदर्भ को ध्यान में रखकर किसी विकल्प का चयन करता है। भाषा में उपलब्ध विकल्प भाषा के विभिन्न स्तरों पर मिलते हैं। भाषा के तीन बुनियादी स्तर होते हैं।

ध्वनि

शब्द–व्याकरण

अर्थ

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भाषा विज्ञान की प्रधान शाखाओं के सवाल पर भाषा वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। भाषा विज्ञान के सामान्य पाठक की दृष्टि से हम भाषा विज्ञान के प्रमुख विभागों अथवा भाषा विज्ञान की प्रमुख शाखाओं की विवेचना करेंगे।

भाषा का ध्वन्यात्मक पक्ष: ध्वनि विज्ञान एवं ध्वनिमविज्ञान अथवा स्वनिम विज्ञान।

भाषा का व्याकरणिक पक्ष: रूपिमविज्ञान एवं वाक्य विज्ञान

भाषा का अर्थ अथवा कथ्य पक्ष: अर्थ विज्ञान

इस प्रकार भाषा विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ निम्न हैं–

ध्वनि विज्ञान अथवा स्वन विज्ञान– इसके अन्तर्गत भाषा की आधारभूत सामग्री का अध्ययन किया जाता है। किसी भी भाषा का कोई भी उच्चार ध्वनियों अथवा स्वनों का अविच्छिन्न प्रवाह है। भाषा की ध्वनियाँ स्वत: अर्थहीन होती हैं। ध्वनियों का उच्चारण भौतिक घटनाएँ हैं तथा इस रूप में ये भौतिक विज्ञान में भी विवेच्य हैं। ध्वनि विज्ञान अथवा स्वन विज्ञान में वाक् ध्वनियों के उत्पादन, संचरण एवं संवहन का अध्ययन किया जाता है।

स्वनिमविज्ञान– इसमें विवेच्य भाषा की ध्वनियों अथवा स्वनों के वितरण के आधार पर अर्थ–भेदक अथवा विषम वितरण में वितरित स्वनिमों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक भाषा में ध्वनियों की अपनी व्यवस्था होती है। दो भाषाओं में ध्वनियाँ समान हो सकती हैं, किन्तु उनका भाषाओं में प्रकार्य समरूप नहीं होता। इस कारण ध्वनियों की संरचनात्मक इकाइयों में भेद होता है। जब हम ध्वन्यात्मक व्यवस्था की विवेचना करते हैं, तब हमारा तात्पर्य किसी विशिष्ट भाषा के स्वनिमों से होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी एवं तमिल में 'D' एवं

'X' ध्वनियों का उच्चारण होता है। हिन्दी में इनका स्वनिमिक महत्व है। तमिल में इनका स्वनिमिक महत्व नहीं है। इसी कारण तमिल की लिपि में इनके लिए अलग अलग वर्ण नहीं हैं।

रूपिमविज्ञान अथवा शब्दरूप प्रक्रिया

वाक्य विज्ञान

रूपिमविज्ञान एवं वाक्य विज्ञान को अलग-अलग शाखाएँ माना जाए अथवा नहीं - यह भी विवाद का विषय है। किसी भाषा के स्वनिमों के विशिष्ट क्रम से निर्मित रूपात्मक या व्याकरणिक इकाइयों की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं का अध्ययन इन शाखाओं का विवेच्य है। स्वनिम व्यवच्छेदक अर्थात् अर्थ भेदक होते हुए भी स्वयं अर्थ शून्य होते हैं, किन्तु इन्हीं के विशेष क्रम से संयोजित होने वाले रूप, शब्द, वाक्यांश एवं वाक्य भाषा के अर्थवान तत्त्व होते हैं। भाषा वैज्ञानिक भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को जानने के लिए इन्हीं तत्त्वों के द्वारा संरचित संरचना स्तरों का अध्ययन करता है। (रूपों का संचय एवं उससे निर्मित रूपिम, शब्द, वाक्यांश, एवं वाक्य आदि)। भाषा में प्रत्येक स्तर पर रचना की विशिष्ट व्यवस्था होती है। प्रत्येक स्तर की इकाई अपने से निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयों से मिलकर बनती है। दूसरे शब्दों में निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयाँ मिलकर बड़े स्तर की इकाई की रचना करती हैं। उदाहरण के लिए वाक्य स्तर की इकाई एक अथवा एकाधिक उपवाक्य/उपवाक्यों द्वारा बनती है। हिन्दी भाषा के संदर्भ को ध्यान में रखकर इनको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

संरचना स्तर

संरचित इकाई
संरचक (एक अथवा एकाधिक)

वाक्यीय स्तर

वाक्य
उपवाक्य

उपवाक्यीय स्तर

उपवाक्य
वाक्यांश अथवा पदबंध
वाक्यांश अथवा पदबंध स्तर
वाक्यांश अथवा पदबंध
पद (सविभक्तिक शब्द)

पदीय स्तर

पद (सविभक्तिक शब्द)
शब्द
शब्द स्तर
शब्द
रूपिम

प्रत्येक स्तर की संरचक इकाई इकाइयों के क्रम, विस्तार आदि की अभिरचनाएँ होती हैं। इन अभिरचनाओं की नियमबद्धता एवं परस्पर सम्बंधों के नियम उस स्तर की व्यवस्था को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों की इकाइयों के परस्पर मिलकर अपने से बड़े स्तर की इकाइयों की रचना के नियम संरचना को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों का परस्पर अधिक्रम होता है। अधिक्रम में एक स्तर में आने वाली इकाइयों का संरचनात्मक मूल्य समान होता है। संरचनात्मक मूल्य से उस व्याकरणिक इकाई की पहचान होती है। एक स्तर की व्याकरणिक इकाई अधिक्रम में अपने से नीचे स्तर की व्याकरणिक इकाई इकाइयों की पहचान कराती है, जो विद्वान रूपिमविज्ञान एवं वाक्य विज्ञान को अलग-अलग शाखाएँ मानते हैं उनके मतानुसार रूपिमविज्ञान में हम लघुतम अर्थयुक्त् इकाईयों से बड़ी इकाईयों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं तथा वाक्य विज्ञान में बड़ी इकाइयों से छोटी इकाइयों की ओर प्रवृत्त होते हैं। निम्न स्तर की संरचना की इकाई अपने से बड़े स्तर की संरचना की संरचक होती है। उदाहरण के लिए शब्द स्तर पर संरचक रूपिम होते हैं। वाक्यांश स्तर पर संरचक शब्द होते हैं। उपवाक्य स्तर पर संरचक वाक्यांश एवं वाक्य स्तर पर संरचक उपवाक्य होते हैं। किसी भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए उसका रूपिम एवं वाक्य विन्यासीय अध्ययन करते हैं। रूपिमविज्ञान में उच्चारों को रूपों में विभाजित करके, वितरण के आधार पर रूपिम में वर्गबद्ध करते हैं। आबद्ध रूपिमों को

व्युत्पादक एवं विभक्ति प्रत्ययों में वर्गीकृत किया जाता है। इस अध्ययन से भाषा की व्युत्पन्न प्रतिपादिक रचना एवं विभक्ति व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। विभक्ति प्रत्यय किसी किन्हीं वैयाकरणिक रूपधूपों की सिद्धि करते हैं। कोटियों के अनुरूप वैभक्तिक होने तथा अथवा वैभाक्तिक शब्दों के वाक्यीय प्रकार्य के आधार पर भाषा के समस्त शब्दों को 'वाग्भागों' में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक वाग्भाग का अध्ययन वैयाकरणिक कोटियों के अनुरूप रूपान्तरित होने वाले वर्गों उपवर्गों के अनुरूप किया जाता है। वाक्य विज्ञान में विवेच्य भाषा के वाक्यों की संरचना सम्बंधी अध्ययन किया जाता है। सामान्यत: किसी भाषा के सामान्य वाक्य को पहले संज्ञा वाक्यांश एवं क्रिया वाक्यांश में विभक्त किया जाता है। नॉम चॉम्स्की ने गहन संरचना के नियमों को जानने के लिए रचनांतरण व्याकरण का मॉडल प्रस्तुत किया। प्रकार्यात्मक भाषा विज्ञान के अध्ययन के बाद विवेच्य भाषा के वाक्य संरचना के विभिन्न तत्त्वों का संरचनात्मक एवं अर्थपरक आधारों पर अध्ययन किया जाता है। इसमें सबसे अधिक महत्व भाषा के वाक्य प्रकारों, मूल अथवा आधार वाक्यों का निर्धारण, मूल अथवा आधार वाक्यों के साँचों एवं उपसाँचों का अध्ययन किया जाता है।

अर्थ विज्ञान- इसमें विवेच्य भाषा के शब्दों के अर्थों का अध्ययन किया जाता है। शब्दार्थ का अध्ययन ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं शब्द के वर्तमानकालिक संदर्भानुसार अर्थ प्रयोगों सहित किया जाता है। उदाहरण के लिए शब्दार्थ के ऐतिहासिक अध्ययन में शब्द में कालक्रमानुसार हुए अर्थ परिवर्तनों के कारणों एवं विभिन्न प्रकार के अर्थ परिवर्तनों के सम्बंध में विचार किया जाता है।

भाषा विज्ञान की अन्य शाखाएँ

क्षेत्र-कार्य भाषा विज्ञान- भाषा का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि हम विवेच्य भाषा-क्षेत्र का सर्वेक्षण करें तथा विवेच्य भाषा के सूचकों से भाषा सामग्री संकलित करें। इस दृष्टि से 'क्षेत्र-कार्य भाषा विज्ञान' भाषा विज्ञान के अध्ययन का एक विभाग है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्न विषयों पर विचार किया जाता है–

भाषा-सर्वेक्षण की विशेषताएँ, स्वरूप एवं प्रकृति
सर्वेक्षण-सामग्री
प्रश्नावली का निर्माण
सर्वेक्षण-क्षेत्र की जानकारी

सामग्री संकलन
सूचकों का चयन, सूचकों की विशेषताएँ एवं योग्यताएँ
सामग्री का अंतर्राष्ट्रीय स्वन वर्णमाला लिपि में प्रतिलेखन
सामग्री का विश्लेषण

भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान- किसी भाषा-क्षेत्र के उपभाषा, बोली आदि क्षेत्रों तथा भिन्न भाषायी क्षेत्रों का निर्धारण 'बोलीविज्ञान' अथवा 'भाषा भूगोल' के सिद्धांतों के आधार पर होता है। कुछ विद्वान भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान को समानार्थक मानते हैं। भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान में अन्तर मानने वाले विद्वानों का यह मानना है कि भाषा-भूगोल में विवेच्य भाषा-क्षेत्र की केवल क्षेत्रगत विविधताओं का अध्ययन किया जाता है, मगर बोलीविज्ञान में विवेच्य भाषा-क्षेत्र की समस्त प्रकार की भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। भाषा-भूगोल के अन्तर्गत भाषा के प्रत्येक तत्त्व को समभाषांश सीमा-रेखा द्वारा भाषा मानचित्रावली में स्पष्ट किया जाता है। इस अध्ययन से दो भाषाओं एवं एक भाषा की दो बोलियों के संक्रमण-क्षेत्र का वैज्ञानिक ढंग से निर्धारण किया जाता है। इस अध्ययन से भाषा-क्षेत्र के केन्द्रीय क्षेत्र, अवशिष्ट क्षेत्र तथा संक्रमण-क्षेत्र आदि का निर्धारण वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न हो पाता है।

भाषा विज्ञान में सामान्य भाषा के स्वरूप तथा भाषा विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों के सम्बन्ध में भी विचार किया जाता है।

(9) भाषा विज्ञान में संसार भर की भाषाओं का ऐतिहासिक सम्बन्ध तथा सम्बन्ध तत्त्वों की समानता एवं प्रकारात्मक आदि आधारों पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है।

अनुप्रयुक्त-भाषा विज्ञान

भाषा शिक्षण।
कोश विज्ञान।
व्युत्पति शास्त्र।
अनुवाद विज्ञान।

'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान' ज्ञान की एक अलग शाखा के रूप में विकास कर रहा है।

भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों, भाषा विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों तथा विभिन्न भाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन संबंधी, निष्कर्षों का उपयोग एवं

प्रयोग भाषा संबंधी अन्य समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। भाषा संबंधी अन्य समस्याओं में प्रमुख हैं–भाषा–शिक्षण, अनुवाद कोश–विज्ञान।

'अनुप्रयुक्त–भाषा विज्ञान' में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की सहायता से उपर्युक्त भाषा विषयक समस्याओं के संबंध में विचार किया जाता है। इस दृष्टि से 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित है––

(1) भाषा विज्ञान (विशेष रूप से अन्य–भाषा के रूप में शिक्षण)
(2) कोश–विज्ञान।
(3) व्युत्पत्ति शास्त्र।
(4) अनुवाद विज्ञान।

भाषा शिक्षण

मातृभाषा को व्यक्ति बाल्यकाल में समाज में रहकर सीख लेता है, किन्तु अन्य भाषा सिखाते समय हमें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

मातृभाषा–शिक्षण एवं अन्य–भाषा–शिक्षण में कई मूलभूत अन्तर हैं। इनमें सर्वप्रमुख यह है कि जब कोई बालक स्कूल में पढ़ने जाता है, तो अपनी मातृभाषा को ध्वनि–व्यवस्था, व्याकरण एवं शब्दावली को सीख चुका होता है। अपनी मातृभाषा की ध्वनियों, दैनिक जीवन की शब्दावली एवं उसके सरल वाक्य साँचों से अभ्यस्त हो चुका होता है। किन्तु अन्य–भाषा शिक्षण के आरम्भ में वह अन्य भाषा में बिल्कुल अपरिचित एवं अनभिज्ञ होता है।

भाषा विज्ञान ने अन्य–भाषा शिक्षण में महत्वूपर्ण योगदान दिया है। भाषा वैज्ञानिक लक्ष्य–भाषा का भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन कर उसकी अभिरचनाओं एवं व्यवस्थाओं की विवेचना करता है। साथ ही प्रशिक्षणार्थी की मातृभाषा की अभिरचनाओं एवं व्यवस्थाओं को ज्ञात कर दोनों भाषाओं (मातृभाषा एवं लक्ष्य भाषा) का, प्रत्येक स्तर पर व्यतिरेकात्मक अध्ययन करता है। इस अध्ययन से दोनों भाषाओं की व्यवस्था एवं संरचना के साम्य वैषम्य का पता चल जाता है। वह यह भी ज्ञात करता है कि मातृभाषा से भिन्न लक्ष्य–भाषा की अभिरचनायें कौन–कौन सी हैं तथा प्रशिक्षण में मातृभाषा के कौन–कौन से भाषिक तत्त्वों का व्याघात संभावित है। इस दृष्टि से वह अध्यापन बिन्दुओं का निर्माण कर, पाठ्य सामग्री का निर्माण करता है। लक्ष्य–भाषा के विशिष्ट ध्वन्यात्मक लक्षणों को अभिरचना–प्राभ्यास प्रक्रिया द्वारा सिखाने की सामग्री प्रदान करता है। इसी प्रकार लक्ष्य–भाषा की विशिष्ट व्याकरणिक अभिरचनाओं,

मूल उपवाक्य संरचनाओं तथा उनके विस्तारणों एवं रूपान्तरणों, शब्द अथवा व्याकरणिक खण्ड परिवर्तनों तथा विविध प्रकार के प्राभ्यसों-सुनना, दुहराना, पहचानना, प्रतिस्थापन, रूपान्तरण, विस्तार, प्रश्नोत्तर आदि की पाठ-सामग्री बनाता है। भाषा-प्रयोगशाला क लिए विशेष पाठों का निर्माण करता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान की पद्धतियों द्वारा भाषा के संपूर्ण प्रशिक्षण का कार्य पूर्व नियोजित एवं वर्गीकृत पाठय-सामग्री तथा नियन्त्रित प्रक्रिया के द्वारा संपन्न करता है।

इस प्रकार भाषा-विश्लेषण, भाषा-शिक्षण-सामग्री-निर्माण तथा भाषा-सामग्री के वर्गीकरण एवं प्रस्तुतीकरण आदि में आधुनिक भाषा विज्ञान बहुत सहायता प्रदान करता है। यह भी उल्लेखनीय 'भाषा विज्ञान' भाषा-शिक्षण में सहायक साधन मात्र है, भाषा विज्ञान ही भाषा-शिक्षण नहीं है। भाषा का अध्यापक भाषा विज्ञान की सहायता से शिक्षणार्थी की मातृभाषा एवं लक्ष्य-भाषा के स्वरूप, साम्य वैषम्य, शिक्षण कार्य की सम्भावित समस्याओं की खोज तथा समाधान हेतु पाठय-सामग्री का तदनुरूप निर्माण आदि कार्य सम्पन्न करता है, किन्तु कक्षा में वह भाषा सीखाता है, भाषविज्ञान नहीं पढ़ाता।

कोश विज्ञान

कोशकार किसी भाषा के समस्त शब्दों का संग्रह कर, उन्हें अकराादि क्रम से सजाता है। प्रत्येक का विभिन्न प्रसंगों एवं संदर्भों में अर्थ-निर्धारण कर, उसके समस्त अर्थों एवं अर्थ-छायाओं का विधान करता है। शब्द के पूर्ण विवरण के लिए वह शब्द का मूलरूप खोजता है, उसके व्याकरणिक रूप को ज्ञात करता है तथा लिंग आदि का निर्वाचन करता है। उसका उच्चरित रूप ज्ञात कर, उसको ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन में लिखता है।

इस समस्त कार्य में ध्वनि विज्ञान, रूपग्रामविज्ञान, अर्थ विज्ञान एवं ऐतिहासिक-विज्ञान उसकी प्रत्येक पग पर सहायता करते हैं।

वस्तुतः भाषा विज्ञान एवं कोश (निघण्टु एवं निरूक्त) एक दूसरे के पूरक हैं।

संस्कृत में व्याकरण, निघण्टु एवं निरूक्त का कार्यक्षेत्र अलग रहा है। व्याकरण में दो मूल अर्थ तत्त्वों के मध्य सम्बन्ध तत्त्व की व्याख्या के लिए विभक्ति रूपों की विवेचना की गयी, निघण्टुकार ने शब्द के पर्याय दिए तथा निरूक्तकार यास्क ने व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विवेचना का कार्य किया। वैदिक शब्दों का पर्याय-ग्रन्थ 'निघण्टु' प्राप्त है।

यास्क ने अपने निरूक्त में इसकी व्याख्या अर्थात् शब्दों की व्युपत्ति एवं अर्थ का विधान किया है। निघण्टु के कुल 796 शब्दों में से निरूत्त में 536 शब्दों की व्याख्या की गयी है।

आधुनिक कोशग्रन्थों में निघण्टु एवं निरूत्त दोनों का योग होता है। यह कार्य भाषा विज्ञान की विधियों एवं सिद्धान्तों के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न किया जाता है।

व्युत्पत्ति शास्त्र

व्युत्पत्ति शास्त्र में शब्द के मूलरूप की खोज की जाती है। अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं है। इसके लिए भाषा विज्ञान ने ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अन्तर्गत एक भाषा की विविध बोलियों अथवा एक भाषा परिवार की विविध भाषाओं के ज्ञात रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर शब्द के पूर्ववर्ती अज्ञात रूप के पुनर्निर्माण की विधि का विकास किया है। इस प्रकार तुलनात्मक विवेचना एवं पुनर्निर्माण-विज्ञान के सिद्धान्त व्युत्पत्तिशास्त्री की सहायता करते हैं।

भाषात्मक विकास एवं परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्त भी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्यक् निर्धारण में सहायता करते हैं।

अनुवाद विज्ञान

एक भाषा की कृति का दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। विषय की जानकारी भर होने से सही अनुवाद नहीं हो पाता। द्विभाषिक शब्दाकोशों से एक भाषा के शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द को रखने से भी हमारे लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो जाती। अनुवाद की अनेक भाषा वैज्ञानिक समस्याएँ हैं–

(1) अर्थपरक समस्याएँ-किसी शब्द का उचित पर्याय खोजना अत्यंत कठिन कार्य होता है। प्रत्येक भाषा के शब्द का अपना इतिहास होता है। प्रत्येक भाषियों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परायें होती है, विशिष्ट भौतिक एवं आध्यात्मिक अनुभव होते हैं, विशिष्ट आस्थायें एवं विश्वास होते हैं, इस कारण प्रत्येक भाषा के शब्द की अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता होती है। इस कारण अनुवाद की लक्ष्य भाषा में से उचित एवं सम्यक् अर्थ प्रतीति कराने वाले शब्द की खोज करनी पड़ती है।

(2) व्याकरणिक समस्याएँ–अनुवाद में शब्दों के साथ–साथ भाषा की संरचना में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अनुवादक मूलग्रन्थ की भाषा की व्याकरणिक विशिष्टताओं, अनुवाद की लक्ष्य भाषा की व्याकरणिक विशिष्टताओं तथा दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं के साम्य वैषम्य से परिचित हो। इस दृष्टि से दोनों भाषाओं के व्याकरणिक अध्ययन एवं व्यतिरेकी भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर उनकी संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं के साम्य वैषम्य की जानकारी प्राप्त कर, हम भाषिक संरचना का भी सही अनुवाद कर सकते हैं।

(3) शब्दावली की समस्या–शब्दावली की समस्या के कई रूप हैं–

(1) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के अनुवाद की समस्या।

(2) आंचलिक शब्दावली के अनुवाद की समस्या।

(3) विशिष्ट भावाभिव्यंजक शब्दावली के अनुवाद की समस्या।

इस दृष्टि से यदि अनुवाद की लक्ष्य भाषा में पर्याय उपलब्ध नहीं हो पाता तो या तो अनुवादक लक्ष्य भाषा में शब्दनिर्माण की प्रकृति को ध्यान में रखकर शब्द का निर्माण कर सकता है अथवा मूलग्रन्थ की भाषा के शब्द की मूल प्रकृति या धातु में दूसरी भाषा के रचनात्मक उपसर्गों एवं प्रत्ययों को लगाकर शब्द व्युत्पन्न कर सकता है।

(4) ध्वन्यात्मक एवं लिप्यंकन की समस्याएँ–मूलग्रन्थ की भाषा में बहुत से ऐसे शब्द होते हैं, जिनका अनुवाद की लक्ष्य भाषा की लिपि में लिप्यंकन करना होता है। इस दृष्टि से मूलभाषा में विवेच्य शब्द का सम्यक् उच्चारण जानने की समस्या तथा उसे उसी रूप में लक्ष्य भाषा की लिपि के द्वारा लिखने के समाधान के लिए ध्वनि विज्ञान, मूल भाषा का ध्वन्यात्मक विवेचन, लिपि विज्ञान तथा लक्ष्य भाषा की परम्परागत लिपि की प्रकृति तथा उसमें अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के विशिष्ट चिह्नों का उपयोग एवं प्रयोग करने की विधि से सम्बन्धित ज्ञान हमारी सहायता करता है।

इस प्रकार अनुवाद की भाषा वैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है।

भाषा विज्ञान एवं मनोविज्ञान

भाषा विज्ञानः मनोविज्ञान के लिए सहायक।

मनोविज्ञानः भाषा विज्ञान के लिए सहायक।

स्वतंत्र अध्ययन दृष्टियाँ

मनोविज्ञान का अध्ययन पहले दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में होता था, किन्तु अब मनोविज्ञान एक पृथक विषय बन चुका है। इसके अन्तर्गत मानव व्यवहार से सम्बन्धित नियमों की खोज, उनका विश्लेषण तथा उनकी विवेचना की जाती है।

मनुष्य की मानसिक घटनाओं का शरीरिक सत्ता के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है-यह अत्यन्त विवाद का विषय है। इतना निश्चित है कि भाषात्मक अभिव्यक्ति के दो आधार हैं- (1.) मानसिक (2.) शरीरिक। मनोविज्ञान व्यक्ति विशेष के अनुभवों, धारणाओं एवं क्रियाओं का अध्ययन करता है। व्यक्ति विशेष की धारणाएँ एवं अनुभव प्रत्यक्षत: उसी का अनुभूत होते हैं। व्यक्ति अपने निजी अनुभवों एवं धारणाओं को समाज से जोड़ता है। इसके लिए वह अपने अनुभवों एवं धारणाओं की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्ति के अभिव्यक्तिकरण-व्यवहार के साधनों में से प्रमुख साधन उसका वाक-उच्चारण है।

व्यक्ति भाषा के द्वारा अपने को समाज से जोड़ता है तथा भाषा के द्वारा उसके अन्तर्मन को जानने में बहुत सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध में भाषा एवं विचार के अन्तर्गत चर्चा की गयी है।

व्यक्ति के वाक-व्यवहार का अध्ययन भाषा वैज्ञानिक भी करता है तथा मनोवैज्ञानिक भी। मनोवैज्ञानिक भाषा के आधार पर किसी मनुष्य के व्यक्तित्त्व तथा उसके व्यवहार का अध्ययन करता है। इसके लिए वह उसकी मातृ-भाषा की सामान्य भाषिक व्यवस्थाओं एवं सरंचना से इतर उसके वाक-व्यवहार की विशिष्टताओं का आकलन करता है।

भाषा वैज्ञानिक भाषा का अध्ययन करते समय उसके माध्यम से अभिव्यक्त विचार के सामान्य पक्ष- 'अर्थ' की विवेचना करता है, बच्चों के भाषात्मक विकास तथा उसके द्वारा भाषा अधिगम की समस्याओं तथा अन्य भाषा शिक्षण में प्रशिक्षणार्थियों का अध्ययन करता है एवं किसी भाषा की विविध शैलियों का विश्लेषण करता है। 'भाषा' एवं 'व्यवहार' तथा 'भाषा' एवं 'विचार' की आन्तरिकता के कारण दोनों अध्ययन-विषय परस्पर सहायक है।

भाषा-विज्ञान: मनोविज्ञान के लिए सहायक

(1) **मनुष्य का व्यक्तित्त्व तथा व्यवहार**-भाषा के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्त्व तथा व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। वाक-व्यवहार से व्यक्ति के

संवेगात्मक अनुभवों और अनुभूतियों को पहचाना जा सकता है। क्रोध में व्यक्ति अलग ढंग से बोलता है, प्यार में अलग ढंग से। आवेश की भाषा अलग तरह की होती है, आनन्दानुभूति की भाषा अलग तरह की। स्नेह और घृणा की अभिव्यक्तियाँ एक सी नहीं होती। अलग-अलग मानसिक स्थितियों में वाक्-व्यवहार के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन लय, आघात, अनुतान, लहजा, आदि में देखा जा सकता है।

भाषा विज्ञान भाषा का वस्तुपरक विश्लेषण करता है। एक भाषा-समाज का व्यक्ति अलग-अलग मानसिक स्थितियों में भिन्न शैलियों में प्रयोग करता है। भाषा-वैज्ञानिक इन शैलियों का विश्लेषण करता है। पांडित्य प्रदर्शन करते समय व्यक्ति 'तत्सम प्रधान भाषा' का प्रयोग करता है। जिन्दगी की सामान्य स्थिति में 'सहज भाषा' का प्रयोग करता है। बातचीत कभी आम होती है तो कभी खास। उच्चारण का लहजा उसके मनोभाव को प्रकट करता है। रूप तथा वाक्य-धरातल पर भी भाषा-रूप में अन्तर आ जाता है। एक वक्ता किसी दूसरे व्यक्ति को बुलाते समय जिस शब्द का प्रयोग करता है, उससे उसके मनोभाव को सूचना मिल जाती है। 'इधर आ', 'यहाँ आओ', 'आइए'- अलग मनोभावों को व्यक्त करते हैं। जिस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में प्रत्येक रचनाकार की अपनी निजी शैली होती है, जिस प्रकार व्यक्ति-बोली के स्तर पर प्रत्येक की बोली में निजीपन होता है, उसी प्रकार अलग-अलग मानसिक स्थितियों में व्यक्ति के बोलने का लहजा बदल जाता है, शब्द बदल जाते है, शब्द का ध्वनि-स्वरूप बदल जाता है, रूप व्यवस्था तथा वाक्य व्यवस्था बदल जाती है तथा वाक्य का अर्थ बदल जाता है। भाषा के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति किस मानसिक स्थिति में क्या 'चयन' करता है-इसका विश्लेषण भाषा-वैज्ञानिक पद्धति से सहज सम्भव है।

कभी-कभी व्यक्ति खुली बात नहीं करता, सच्ची बात नहीं बोलता, झूठी बात करता है या बात छिपा जाता है। जब व्यक्ति अपने मन से एक प्रकार से अनुभव करता है तथा उसकी अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से करता है तब उसके 'वाक्-व्यवहार' से उसके व्यक्तित्त्व का विश्लेषण किस प्रकार सम्भव है ? इस सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है। सम्प्रति, यह उल्लेखनीय है कि यदि शब्द के स्तर पर वह अपने मन की बात छिपा जाता है तो भाषा की संरचना के 'विचलन प्रयोगों' से उसके मन की परतों को पहचाना जा सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का परीक्षण करते समय 'शब्द-प्रयोग' की अपेक्षा भाषा-व्यवस्था एवं संरचना प्रयोगों को अधिक महत्त्व देना चाहिए। 'नहीं', मैंने यह काम नहीं

किया। 'नहीं, नहीं, यह काम मेरे द्वारा नहीं हुआ'-दोनों वाक्यों का 'अभिप्रेत-अर्थ' समान है। दोनों में 'भाव' का अन्तर है। इस अन्तर को वाक्यों के संरचना-भेद से जाना जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के चिन्तन के विश्लेषण के लिए भाषिक दृष्टि से 'शब्द-परीक्षण करता रहा है। इसे चिन्तन के विश्लेषण के लिए भाषा में निहित व्यवस्था एवं संरचना के विश्लेषण की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए इसे भाषा-विज्ञान की संरचनात्मक-पद्धति से परिचय प्राप्त करना चाहिए।

(2) मानसिक विकृति तथा वाक्भ्रन्श-मनोविज्ञान मानसिक दृष्टि से विकृत-व्यक्तियों का भी निदान करता है। इस कारण इसमें 'वाक् भ्रंश' का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में भाषा विज्ञान एवं मनोविज्ञान परस्पर सहायक हैं।

(3) भाषा-अर्जन तथा भाषा विकास-मनोविज्ञान में बच्चों के भाषा अर्जन तथा भाषा-विकास का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भाषा सीखना एक माननीय-व्यवहार को 'सीखना और याद करना है। बच्चा अपनी मातृ-भाषा को सहज रूप से सीख लेता है। यह शब्द सुनता है। धीरे-धीरे उसका अर्थ ग्रहण कर क्रिया करता है। यह बात कही जा चुकी है कि शब्द और अर्थ में प्राकृत सम्बन्ध नहीं है। भाषा के विकास की प्रक्रिया में दोनों का सम्बन्ध जुड़ जाता है। भाषा-विकास की दृष्टि से शिशु पहले कुछ सप्ताहों तक रोता है, खाँसता है, छींकता है तथा किलकारी भरता है। तीन महीने का होने पर यदि कोई उसके साथ खेलता है तो प्रसन्नता के साथ हँसता है तथा आवाज करता है। छह महीने से नौ महीनों के बीच हिन्दी भाषी बच्चा 'आ' 'पा' आदि बोलने की कोशिश करता है। पाँच-छह महीने का होने पर यदि कोई उससे बातें करता है तो वह अपना सिर उसकी तरफ घुमाता है। अपनी माँ या अपने अभिभावक का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए आवाज करता है। एक वर्ष से डेढ़ वर्ष के बीच वह 'माँ', 'पापा', 'बाबा' आदि कुछ शब्द बोलने लगता है तथा 'ना' 'नही' जैसे शब्दों का अर्थ समझने लगता है।

दूसरे वर्ष का होते-होते वह शब्द-प्रयोग करना सीख जाता है। इसी के साथ-साथ वह शब्द में ध्वनि-खंडों को ग्रहण करता है तथा एक शब्द में एक ध्वनि-खंड के स्थान पर दूसरा ध्वनि खंड जोड़कर नया शब्द बनाता है। शब्दों में परस्पर अर्थ-भेद करने लगता है। दो वर्ष का हो जाने के बाद छोटे-छोटे वाक्य बनाने लगता हैं।

बच्चों के भाषा-अर्जन तथा भाषा-विकास में मनोविज्ञान की विशेष अभिरूचि है। इसका कारण यह है कि यह प्रक्रिया मानव-व्यवहार की कई समस्याओं के समाधान में सहायक है।

भाषा विज्ञान इस दिशा में मनोविज्ञान को नया चिन्तन एवं पद्धति प्रदान करता है। भाषा विज्ञान से यह जानकारी प्राप्त होती है कि किसी भाषा का बच्चा अपनी भाषा की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं में से किन-किन को किस क्रम से सीखता है। भाषा के सम्पूर्ण शब्द-कोश में से सबसे पहले किन शब्दों का प्रयोग करता है।

उदाहरण के रूप में एक हिन्दी-भाषी बच्ची के भाषा विकास का अध्ययन करते हुए महरोत्रा ने सबसे पहले उच्चारित ध्वनियाँ (अ), (आ), (म्) तथा सर्वप्रथम उच्चारित शब्द 'ता' माना है।

(4) अर्थ-विज्ञान-मनोविज्ञान को भाषा विज्ञान से सबसे अधिक सहायता 'अर्थ'-विज्ञान' के क्षेत्र में प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में व्होर्फ ने भाषा विज्ञान को तत्त्वत: 'अर्थ की खोज' करने वाला विषय बतलाया है तथा अर्थ की उपेक्षा करने के कारण अपने समय के मनोविज्ञान के सभी सम्प्रदायों की आलोचना की है। ब्लूमफील्ड के बाद 'संरचनात्मक भाषा विज्ञान' में 'अर्थ' उपेक्षित हो गया था किन्तु सातवें दशक से भाषा विवेचना में 'अर्थ' की पुन: समाहित किया जाने लगा है। भाषा के प्रत्येक स्तर पर 'अर्थ' को 'वितरण' के समान महत्वपूर्ण मानकर 'अर्थ का वितरणात्मक विश्लेषण किया जा रहा है। फर्थ ने अर्थ के विश्लेषण के लिए 'परिस्थिति-संदर्भ' पद्धति का आष्किार किया है, जिसमें शब्द के सहप्रयोगों के आधार पर उसका अर्थ निर्धारित किया जाता है। काट्ज तथा फोडर ने शब्द के पूरे अर्थ को अर्थ-परमाणुओं के रूप में खंडित करने की विधि प्रतिपादित की है। अर्थीय चिह्नकों के आधार पर भिन्न-भिन्न शब्दों की अर्थ-भिन्नता तथा एक ही शब्द के अनेकार्थक अणुओं को वस्तुपरक पद्धति से विश्लेषित किया जा सकता है। शब्द के आत्मगत प्रभाव से इतर, अर्थ के अध्ययन की वस्तुगत पद्धति के लिए मनोविज्ञान को भाषा विज्ञान से मार्गदर्शन मिल सकता है।

(5) अन्य-भाषी व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक परीक्षण-भाषा विज्ञान की मान्यता है कि एक भाषा के शब्द का पर्याय दूसरी भाषा में खोजना दुष्कर है। शब्द के पूर्ण पर्याय प्राय: नहीं होते। प्रत्येक भाषा के व्यक्ति का दृष्टिकोण अपनी भाषा की संरचना से प्रभावित होता है।

मनोवैज्ञानिक अन्य-भाषी व्यक्ति के वाक्-व्यवहार का परीक्षण किस प्रकार सम्पन्न करें ? हम उससे यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि एक व्यक्ति के वाक-व्यवहार का परीक्षण करने के लिए वह अन्य-भाषी व्यक्ति की भाषा सीखें। मनोवैज्ञानिक सामान्यत: अनुवाद के माध्यम से परीक्षण कार्य करता है। यहाँ हम जोर देकर यह कहना चाहते हैं कि उसे अनुवाद के माध्यम से परीक्षण करते समय सतर्कता बरतनी चाहिए।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'अर्थ' के परिमापन का अर्थ 'व्यवहार का परिमापन' है। भाषा विज्ञान मनोवैज्ञानिक को संचेत करता है कि उसे भाषागत संरचना तथा शब्द के सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़े हुए भावार्थ को ध्यान में रखकर परीक्षण-कार्य करना चाहिए।

भारतवर्ष में अंग्रेजी के माध्यम से कार्य करने वाले मनोविश्लेषक जब इन तथ्यों पर ध्यान नहीं देते तो अपने विश्लेषण में सही मार्ग से भटक जाते हैं।

यदि मनोविश्लेषक को किसी अन्य भाषा-क्षेत्र में स्थाई रूप से अन्य-भाषी व्यक्तियों का परीक्षण-कार्य करना हो तो उसे उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा का ज्ञान होना चाहिए तथा स्थानीय सांस्कृतिक एवं भावात्मक शब्दों के अर्थ-प्रयोगों से सुपरिचित होना चाहिए।

(6) चिन्तन-चाम्स्की के व्याकरण-दर्शन ने मनोविज्ञान को चिन्तन की विशिष्ट आधार भूमि प्रदान की है। चाम्स्की की मान्यता है कि मनुष्य पशु से प्रज्ञा या विचारणा के कारण नहीं अपितु 'भाषा-सामर्थ्य' के कारण भिन्न है। चाम्स्की ने 'सार्वभाषिक-व्याकरण' का दर्शन प्रस्तुत किया है। विशिष्ट भाषा के व्यक्ति की 'भाषा-सामर्थ्य एवं 'भाषा-निष्पादन' अन्तर किया है। 'सार्वभाषिक व्याकरण' भाषाओं की सार्वभौमिक विशेषताओं का आकलन है, भाषाओं से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण है, सभा भाषाओं में अन्तर्निहित संरचना के सामान्य लक्षणों की खोज है। इन सामान्य लक्षणों का अन्तिम आधार मानव मस्तिष्क है। भाषा-अर्जन की चेतना-शक्ति के कारण एक बच्चा संसार की किसी भी भाषा को सीख लेता है। इस आधार पर चाम्स्की, लेनबर्ग एवं मेकनील आदि विद्धानों ने भाषा-अर्जन की 'चेतना-शक्ति' को जन्मजात माना है। चेतना-शक्ति् मानसिक है। भाषा सीखने की सामर्थ्य का आधार 'मानसिक' है। विशेष भाषा के बोलने का आधार 'व्यवहार-अभ्यास है। व्यक्ति व्यवहार में भाषा का 'निष्पादन' करता है। निष्पादन की स्थिति में स्मृति, ध्यान रूचि आदि कारणों के भेदों के कारण प्रत्येक व्यक्ति के वाक-व्यवहार में अन्तर आ जाता है।

चाम्स्की ने भाषा की मानसिक यांत्रिकता का विश्लेषण कर, संज्ञान (Cognition) का मूल आधार भाषा-शक्ति को स्वीकार किया है तथा संज्ञानात्मक-मनोविज्ञान का चिन्तन की नयी भूमिका प्रदान की है।

मनोविज्ञानः भाषा विज्ञान के लिए सहायक

(1) भाषा का मानसिक पक्ष–भारतीय परम्परा भाषा की मानसिक-क्रिया तथा वाचिक-क्रिया दोनों को महत्त्व देती हैं।

मनोविज्ञान भाषा के मानसिक पक्ष के सामान्य स्वरूप का अध्ययन करता है। यह भाषा के बोलने, सुनने, ग्रहण करने तथा शब्दार्थ प्रतीति करने पर विभिन्न मानसिक स्थितियों के प्रभाव की विवेचना करता है।

(2) तंत्रिका-मनोविज्ञान ध्वनि विज्ञान–व्यक्ति के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होता है। इससे तंत्रिकायें उत्तेजित होती हैं। तंत्रिकायें वाक्-अवयवों को ध्वनि-उच्चारण के लिए प्रेरित करती हैं।

ध्वनि लहरें श्रोता के कानों के विभिन्न मार्गों को कम्पित करती हैं। कान के अन्तिम भाग से सम्बद्ध श्रवण-तंत्रिका के माध्यम से ध्वनि-लहरें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं।

'तंत्रिका-मनोवैज्ञानिक ध्वनि विज्ञान' में वाक्-व्यवहार से सम्बन्धित तंत्रिकाओं का तथा उनके मस्तिष्क एवं पेशियों से अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टि से वाटसन, जेकब्सन, मैक्स फिस आदि मनोवैज्ञानिकों के कार्य नयी दिशा प्रदान कर सकते हैं।

(3) वाक्य विज्ञान–किसी व्यक्ति के वाक्य प्रयोग से उसकी मनःस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

एक ग्लास के आधे भाग में पानी है।

एक व्यक्ति कहना है कि ग्लास आधा भरा है।

दूसरा व्यक्ति कहना है कि ग्लास आधा खाली है।

दो व्यथ्कत्यों की उपर्युक्त अभिव्यक्तियों उनकी भिन्न मानसिकता की धोतक हैं। चाम्स्की की मान्यता है कि प्रत्येक भाषा के बोलने वाले के मस्तिष्क में भाषा की आन्तरिक संरचना के मूलभूत नियम होते हैं। भाषा-सामर्थ्य के कारण वह ऐसे वाक्यों का प्रजनन कर पाता हैं, जो उसने कभी नहीं सीखे। श्रोता के रूप में वह ऐसे वाक्यों को समझ लेते हैं, जो उसने पहले नहीं सुने। वक्ता प्रयुक्त भाषा रूप 'निष्पादन' हैं, जो वक्ता की मानसिक स्थितियों के अनुरूप

प्रभावित होता है। मनोविज्ञान भाषा-सामर्थ्य विषयक सूत्रों या नियमों के खोज करने तथा भाषा -निष्पादत सम्बन्धी अध्ययन करने में सहायक है।

(4) अर्थ विज्ञान–शब्द के अर्थ पर विचार करते समय भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि वस्तुपरक होती है। वैयाकरण किसी भाषा का व्याकरण तैयार करते समय यह जानना चाहता है कि उस भाषा का विवेच्य शब्द अथवा वाक्य सार्थक है या नहीं ? कोशकार पर्याय, अनेकार्थक तथा समनाम शब्दों के संग्रह की दृष्टि से शब्दों के अर्थों पर विचार करता है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में किसी शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाता है, उसके इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत करते समय उसके अर्थ की विकास-परम्परा पर वस्तुगत दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। इधर 'अर्थ' को भाषा के प्रत्येक स्तर पर विश्लेषित करने का जो प्रयास हो रहा है उसमें भी शब्द के अनिधेयार्थ एवं भाषा के व्यवस्था एवं संरचना रूपों के अर्थ-निर्धारण पर दृष्टि केन्द्रित है। मनोविज्ञान अर्थ का अध्ययन मनुष्य के व्यवहार को जानने की दृष्टि से करता है। वह शब्द के अर्थ का परिमापन करता है। शब्द-प्रयोग के समय वक्ता की मानसिक स्थिति की दृष्टि से तथा श्रोता की उत्तेजन-प्रतिक्रिया की दृष्टि से विचार करता है। मनोवैज्ञानिक के लिए अर्थ का परिमापन मनुष्य के व्यवहार का परिमान है। इस कारण मनोविज्ञान में 'अर्थ' पर अनेक दृष्टियों से विचार किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शब्द के बोलने एवं सुनने के समय सामान्य शारीरिक प्रतिक्रियाओं का तथा विशिष्ट शब्दों के बोलते समय वक्ता की एवं सुनते समय श्रोता की विशिष्ट शारीरिक-प्रतिक्रियाओं का अंकर करता है। यह 'सीखने'' की प्रक्रिया पर विशद् विचार करता है। शब्द एवं अर्थ को सीखते समय की प्रक्रिया, प्रतिक्रिया, व्यवधान क्रम आदि का अध्ययन करता है। वाचक तथा वाक्य के सम्बन्ध स्थापन से उत्पन्न अर्थ-प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। अर्थ के परिमापन के लिए सांख्यिकी-तकनीक भी अपनाता है। अर्थ परिमापन की विविध विधियों को अपनाने के उपरान्त 'अर्थ-निर्धारण' करता है।

अर्थ आत्मगत है अर्थात् अर्थ का बोध 'व्यक्ति' को होता है, किन्तु अर्थ का विविध विधियों से परिमापन करने के कारण इसका निर्धारण सम्भव है।

'सोस्यूर', 'आग्डेन एवं रिचर्ड्स, 'व्लूमफील्ड' एवं 'येल्मस्लेव' के अर्थ सम्बन्धी विचार मनोवैज्ञानिक चिन्तन से प्रभावित हैं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द के 'अधिधेयार्थ' पर विचार किया जा सकता है। भाषा-प्रयोग के समय कुछ शब्द विशिष्ट भावात्मक तथा संवदनात्मक

व्यापारों का सम्प्रेषण करते हैं। शब्दों की 'अभिधा' के अतिरिक्त 'लक्षणा' एवं 'व्यंजना' शक्तियाँ भी हैं जिनके कारण 'लक्ष्यार्थ' एवं 'व्यंग्यार्थ' का बोध होता है।

भाषा विज्ञान को, शब्द के लक्ष्यार्थ, व्यग्यार्थ एवं भाषा के द्वारा व्यक्त भावात्मक एवं संकल्पनात्मक अर्थों के परिमापन एवं निर्धारण में, मनोविज्ञान से दिशा प्राप्त करनी चाहिए।

(5) भाषा अर्जन तथा बच्चों में भाषा का विकास–इन दिशा में दोनों विषय परस्पर सहायक हैं। मनोविज्ञान के अध्ययन का एक क्षेत्र 'सीखना' है। भाषा सीखने का मूल आधार क्या है ? सीखने की मानसिक-सामर्थ्य के कारण भाषा सीखी जाती है या समाज में भाषा रूपों को सुनकर व्यक्ति अपनी आदत का निर्माण करता है ? इनमें किस पर बल देना चाहिए ? मनोविज्ञान में भाषा-अर्जन सम्बन्धी भिन्न दृष्टिकोण हैं इनका प्रभाव व्याकरण के रचना-सांचों पर पड़ा है।

बच्चों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है ? सर्वप्रथम शिशु किन ध्वनियों का उच्चारण करता है। विभिन्न भाषाओं के शिशु ध्वनियों, शब्दरूपों, वाक्यरूपों को क्रमशः किस प्रकार तथा कितना सीखते हैं। मनोविज्ञान में इन सभी पक्षों की विवेचना की जाती है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन से किसी भाषा के आधारभूत वाक्य-साँचों, सर्वाधिक प्रयुक्त व्याकरणिक रूपों, आधारभूत-शब्दावली, भेदक ध्वनि रूपों, प्राथमिक ध्वनिग्रामों, तथा भेदक तत्त्वों की पहचान में सहायता मिल जाती है। इससे भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में भी सहायक ली जा सकती है।

(6) अन्य-भाषा शिक्षण–अन्य भाषा सीखते समय प्रशिक्षणार्थी सचेत होता है। मनोविज्ञान अन्य-भाषा को अधिकाधिक सहज रूप में सिखाने के सम्बन्ध में भाषा-वैज्ञानिक की सहायत करता है।

अन्य भाषा सीखना अधिगत-व्यवहार है। सीखने में प्रशिक्षणार्थी की रूचि, लगन, प्रेरणा का महत्त्व निर्विवाद है। मनोविज्ञान की सहायता से प्रशिक्षणार्थी की मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा उसके भाषा-कौशल का परिमापन किया जाता है।

लेखक को विदेशी छात्रों को हिन्दी पढ़ाते समय उनके भाषा-अर्जुन के सापेक्षिक अंतरों का अनुभव हुआ है। बेल्जियम देश की फ्लेमिश-भाषी श्रीमती एलिजाबेध खान ने हिन्दी ने हिन्दी सीखने में अत्यधिक उत्साह एवं निष्ठा दिखायी। उन्होंने बहुत जल्दी भाषा सीखी। इसके कारणों में से सर्वप्रथम कारण

'प्रेरणा' थी। बेल्जियम में उनका विवाह हिन्दी भाष श्री खान से हुआ। अपने पति से हिन्दी में बात कर सकने की आवश्यकता के कारण उन्होंने हिन्दी सीखने के लिए बेल्जियम शासन के शिक्षा मंत्रालय को छात्रवृत्ति प्राप्त की। वे उसी छात्रवृत्ति पर भारत में हिन्दी सीखने आयीं तथा उन्होंने सापेक्षिक दृष्टि से कम समय में हिन्दी बोलना सीख लिया।

(7) शैलीविज्ञान–प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग स्थितियों में भिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। इसी कारण उसकी बात कभी मीठी हो जाती है तो कभी कड़वी, कभी रसीली, तो कभी नीरस। कभी बात से रस टपकता है तो कभी क्रोध प्रकट होता है। कभी व्यक्ति मधुर बात करता है जिससे दिल मिल जाता है, कभी तीखी बात करना है, जिससे दिल फट जाता है। कभी उसकी बात को महत्त्वपूर्ण माना जाता है तो कभी फालतू। प्रत्येक रचनाकार की अपनी शैली होती है। 'चयन' एवं 'विचलन-प्रयोगों' का व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सम्बन्ध है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान 'शैली प्रयोगों' का व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सम्बन्ध है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान 'शैलीविज्ञान' का सहायक है।

(8) भाषा-परिवर्तन–मनोवैज्ञानिक कारणों से भाषा के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन होता है।

ध्वन्यात्मक स्तर पर बनकर बोलने, बोलने में शीघ्रता करने तथा भावातिरेक में बोलने के कारण शब्दों के उच्चारण बदल जाते हैं साँप-शाँप, पण्डित जी-पण्डिज्जी तथा बेटी-बिटिया में यह प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं।

इसी प्रकार व्याकरणिक स्तर पर वाक्य की रचना बदल जाती है। जब यह बदलाव 'सामाजिक-मनोविज्ञान' के धरातल पर होता है तो भाषा की व्यवस्था एवं संरचना भी परिवर्तित हो जाती है। हिन्दी में वर्तमान-सातत्य-क्रिया धरातल पर पुल्लिंग बहुवचन प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है। एक विद्यार्थी भी कहता हैं-'हम जा रहे हैं, हम पढ़ रहे हैं। वचन भेद की समाप्ति के साथ ही लिंग भेद भी मिट रहा है। एक लड़की भी कक्षा में बोलते हुए सुनी जा सकती है-'सर'! हम पढ़ रहे हैं।'

शब्दों में अर्थ-परिवर्तन के लिए मनोविज्ञान बहुत अधिक उत्तरदायी है। नम्रता से प्रेरित व्यक्ति दूसरे से पूछता है-''आपका दौलतखाना कहाँ है ? मेरे गरीब खाने पर कभी तशरीफ लाइए।'' व्यंग्य में पूछने के कारण ही 'महात्मा', 'महापण्डित', 'नेता' के अर्थ बदल रहे हैं। 'आप तो पूरे महात्मा हैं, 'आप

महापण्डित जो ठहरे।' 'और सुनाओ नेताजी, क्या हाल-चाल है।' प्राचीन अवेस्ता (जेन्दावेस्ता ग्रन्थ की भाषा, फारसी भाषा की पूर्ववर्ती भाषा) में 'अहुर' में 'असुर' का अर्थ 'देवता' है। भारत का असुर का अर्थ राक्षस और सुर का अर्थ देवता है। इस अर्थ-भेद का कारण ईरानी-आर्य शाखा और भारतीय-आर्य शाखा के बीच तत्कालीन व्याप्त मनोवैज्ञानिक घृणा है। श्री रामधारीसिंह दिनकर आदि के निष्कर्ष इसका समर्थन करते हैं।

भावावेग की मन:स्थिति में जब कोई 'सोल', 'बेटा', 'नालायक' का उच्चारण करता है तो इनका वही अर्थ नहीं होता जो सामान्य स्थिति में होता है।

(9) भाषा चिन्तन—मनोविज्ञान ने भाषा चिन्तन को प्रभावित किया है। इसे 'ब्लूमफील्ड' एवं 'चास्की' के उदाहरणों से समझा जा सकता है। ब्लूमफील्ड व्यवहारवादी हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान की मान्यता है कि मनुष्य के व्यवहार का निरीक्षण परीक्षण सम्भव हैं, मन का नहीं। व्यवहार को समझने के लिए अनुभव, चेतना और अन्तर्निरीक्षण का कोई महत्व नहीं है। उद्धीपनों और प्रतिक्रियाओं के अध्ययन से व्यवहार को समझा जा सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान 'मन का विज्ञान' नहीं'व्यवहार का विज्ञान' है। ब्लूमफील्ड ने भाषा को विशेष उद्धीन से प्रेरित विशेष वाचिक प्रतिक्रिया कहा है। इनका भाषा-दर्शन व्यवहारवादी मनोविज्ञान या यांत्रिकमनोविज्ञान पर आश्रित है। इन्होंने एक मनुष्य के आचरण की दूसरे मनुष्य के आचरण से भिन्नता का कारण अभौतिक गुणक (मनस या मन:शक्ति या आत्मा) को स्वीकार नहीं किया है। इन्होंने मानवीय आचरण का अध्ययन भौतिकी या रसायनशास्त्र की तरह करने में विश्वास प्रकट किया है। इन्होंने 'मनोवादी मनोविज्ञान' या 'मानसिकवाद' की व्याख्यात्मक प्रणाली को स्थान नहीं दिया है, अपितु 'यांत्रिक-विज्ञान' की वस्तुपरक पद्धति को महत्व दिया है। इन्होंने भाषा को वत्ता के मानसिक पक्ष से नहीं जोड़ा विशेष उद्धीपन से प्रेरित भाषिक व्यवहार या भाषिक प्रतिक्रिया को भाषा माना है। भाषा परक तथ्यों का अध्ययन रूपात्मक-विश्लेषण के आलोक में करने का उद्घोष किया है।

चाम्स्की का भाषा चिन्तन ब्लूमफील्ड के भाषा चिन्तन से भिन्न है। चाम्स्की के भाषा- अध्ययन तथा संज्ञात्मक मनोविज्ञान में गहरा सम्बन्ध है। चाम्स्की के भाषा अध्ययन का आधार व्यवहारवादी मनोविज्ञान का 'उत्तेजन-प्रतिक्रिया व्यवहार' नहीं है। यह संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की 'संज्ञान' की अवधारणा से प्रभावित है। 'संज्ञान' एक व्यापक शब्द है। यह स्मृति एवं चिन्तन की प्रक्रिया

का द्योतक है, इसमं जानने का आधार मानसिक क्रियाएँ- प्रत्यक्षण, स्मरण, समझना, तर्क, निर्णय आदि मानसिक क्रियाऐं हैं। 'संवेदन' तथा 'संज्ञान' में अन्तर है। संवदेन के द्वारा प्राणी को उत्तेजन का आभास मात्र होता है ज्ञान नहीं होता। 'संज्ञान' से मनुष्य के संवेदन संगठित होते है सार्थक बनते हैं। मनुष्य अन्य प्राणियों से इस कारण श्रेष्ठ है कि वह 'संज्ञान-शक्ति' के द्वारा 'संवेदनों' को नाम, रूप, गुण आदि भेदों से संविशेष बनाकर ज्ञान प्राप्त करता है। चाम्स्की ने ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की भाँति भाषिक-सामर्थ्य को मानसिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया है। इन्होंने भाषा-व्याकरण का उद्धेश्य निष्पादित सामग्री में अन्तर्निहित तथा भाषा-भाषियों के मस्तिष्क में विद्यमान सामर्थ्य नियमों की खोज करना माना है। इसी सामर्थ्य के कारण भाषा का कोई वत्ता परिस्थिति के अनुकूल नए-नए वाक्यों को बना पाता है। चाम्स्की ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की अवधारणाओं के आधार पर एक ओर अपना भाषा-दर्शन स्थापित किया है तो दूसरी ओर अपने चिन्तन द्वारा मानव-मस्तिष्क के अध्ययन की दिशा में योगदान भी दिया है।

6

हिन्दी व्याकरण का इतिहास

हिन्दी भाषा का व्याकरण लिखने के प्रयास काफी पहले आरम्भ हो चुके थे। अद्यतन जानकारी के अनुसार हिन्दी व्याकरण का सबसे पुराना ग्रंथ बनारस के दामोदर पण्डित द्वारा रचित द्विभाषिक ग्रंथ उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण सिद्ध होता है। यह बारहवीं शताब्दी का है। यह समय हिंदी का क्रमिक विकास इसी समय से प्रारंभ हुआ माना जाता है। इस ग्रंथ में हिन्दी की पुरानी कोशली या अवधी बोली बोलने वालों के लिए संस्कृत सिखाने वाला एक मैनुअल है, जिसमें पुरानी अवधी के व्याकरणिक रूपों के समानान्तर संस्कृत रूपों के साथ पुरानी कोशली एवं संस्कृत दोनों में उदाहरणात्मक वाक्य दिये गये हैं। 'कोशली' का लोक प्रचलित नाम वर्तमान में 'अवधी' या 'पूर्वीया हिन्दी' है।

1675ई. से कुछ पूर्व ब्रज भाषा के व्याकरण का एक ग्रंथ मिर्जा खान इब्न फखरूद्दीन मुहम्मद द्वारा लिखा गया है। 16 पृष्ठों के तुहफतुल हिन्द नामक इस संक्षिप्त ग्रंथ में हिन्दी साहित्य के विविध विषयों का विवेचन है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं - व्याकरण, छन्द, तुक, अलंकार,शृंगार रस, संगीत, कामशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र और शब्दकोष। 1898 में एक डच विद्वान योन योस्वा केटलार द्वारा लिखे गए हिंदी व्याकरण के प्रमाण भी मिलते हैं। हिंदी विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी भी अपने लेखों में इस ग्रंथ का उल्लेख मिलता है।

अठारहवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण

केटलार व्याकरण के लैटिन अनुवाद के प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही प्रख्यात मिशनरी बेंजामिन शुल्ट्स का ग्रामाटिका हिन्दोस्तानिका (हिन्दुस्तानी व्याकरण) सन् 1744 में प्रकाशित हुआ। यह व्याकरण लैटिन भाषा में है, जिसका पाँच पंक्तियों का पूर्ण शीर्षक डॉ. ग्रियर्सन ने Linguistic Survey of India] Vol IX] Part I के पृ. 8 पर दिया है। शुल्ट्स को केटलार व्याकरण की जानकारी थी और अपनी भूमिका में इसका उल्लेख किया। हिन्दुस्तानी शब्द फारसीअरबी लिपि में रोमन लिप्यंतरण सहित दिये गये हैं। देवनागरी लिपि की भी व्याख्या है। मूर्घन्य अक्षरों की ध्वनि की उसने उपेक्षा की है और (लिप्यंतरण में) सभी महाप्राण अक्षरों की। पुरुषवाचक सर्वनामों के एकवचन और बहुवचन रूपों का उसे ज्ञान था, परन्तु सकर्मक क्रियाओं के भूतकाल में कर्ता में प्रयुक्त 'ने' विभक्ति के बारे में वह अनभिज्ञ था।

सन् 1771 में कापुचिन मिशनरी कासिआनो बेलिगाति द्वारा भाषा में लिखित 'Alphabetum Brammhanicum' रोम से प्रकाशित हुआ। इसमें नागरी के साथ-साथ भारत की अन्य प्रमुख लिपिओं को चल टाइपों में मुद्रित किया गया है और इन पर विस्तृत विवेचना की गयी है। इसके भूमिका-लेखक Johannes Christophorus Amaditius (Amaduzzi) ने भारतीय भाषाओं के बारे में उस समय वर्तमान ज्ञान का सम्पूर्ण विवरण दिया है।

यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि केटलार व्याकरण के लैटिन अनुवाद, शूल्ट्स व्याकरण एवं Alphabetum Brammhanicum के भूमिका सहित नागरी लिपि संबंधी अंश का हिन्दी अनुवाद अभी उपलब्ध है। 16 हिन्दी भाषा एवं लिपि के अध्ययन के लिए इन तीनों प्राचीनतम कृतियों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

जार्ज हेडली का व्याकरण सन् 1772 में लंदन से प्रकाशित हुआ। इसके तरन्त बाद इससे बेहतर व्याकरण प्रकाशित हुए, जैसे - किसी अज्ञात लेखक का पोर्तुगीज भाषा में Gramatica Indostana रोम से 1778 में, जो हेडली के व्याकरण की अपेक्षा बहुत विकसित था। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष डॉ. जॉन बॉर्थविक गिलक्राइस्ट का 'A Grammar of the Hindoostanee Language' सन् 1796 में प्रकाशित हुआ। यह व्याकरण उनके 'A System of Hindoostanee Philology', खंड-1 का तीसरा भाग था।

सिन्धी का आदर्श व्याकरण और निराली कारक रचना'

भाषा ! भावनाओं–विचारों को प्रकट करने का माध्यम होती है और जिस भाषा में ऐसे गुण अधिक हों, उसी को सबसे समर्थ और आदर्श (आईडियल) भाषा मानना चाहिए।

सिन्धी में भावनाओं और निराले गुणों को प्रकट करने वाले शब्दों में से एक शब्द है 'भवाइतो' -- जिसका रूप संस्कृत में 'भयप्रद', हिन्दी में 'भयानक' उर्दू में समानार्थी 'खौफनाक' और अंग्रेजी में Terrible के लिंग और वचन के रूप नहीं बनते और न ही कारक रूप।

जबकि सिन्धी में 'भवाइतो' के चार -- भवाइतो (पुर्लिंग, एक वचन) -- भवाइता (पुर्लिंग, बहु वचन), भवाइती (इस्त्रीलिंग, एक वचन) -- भवाइतियूं (इस्त्रीलिंग, बहु वचन) और कर्ता कारक 'ने' के अर्थ वाले चार -- भवाइतो झ 'भवाइते' (पुर्लिंग, एक वचन), भवाइता झ 'भवाइतनि' (पुर्लिंग, बहुवचन), भवाइती झ 'भवाइतीअ' (इस्त्रीलिंग, एकवचन) ऐं भवाइतियूं झ 'भवाइतुनि' (इस्त्रीलिंग, बहुवचन), मिलाकर कुल आठ रूप बनते हैं।

संस्कृत में कर्ता कारक के रूप नहीं बनते, पर हिन्दी और उर्दू में कर्ता कारक 'ने' है, जो सिन्धी के 'न - नि' का रूप है -- जैसे कि -- हो -- हुन (वह झ उस -- उसने), हू -- हुननि (वे झ उन - उन्होंने)।

इस तरह सिन्धी के 'सुंहिंणो' ऐं 'मोहिणो' आदि शब्दों के भी आठ - आठ रूप बनते हैं। पर संस्कृत और हिन्दी के 'सोहन' और 'मोहन' - 'मोहक' तथा उर्दू के 'खूबसूरत' और 'दिलकश' के रूप नहीं बनते।

सिन्धी के ऐसे दूसरे भी कई गुण हैं, जिनको अभी तक प्रकट नहीं किया गया है।

इन रूपों से प्रमाणित हो जाता है कि सिन्धी में भावनाओं को प्रकट करने की सामर्थ्य, दूसरी भाषाओं से आठ गुनी अधिक है -- सिन्धी का व्याकरण एवं कारक रचना सभी भाषाओं से अधिक समर्थ और आदर्श भी है।

(सिन्धी भाषा के हित में इस लेख को अंग्रेजी में शेयर करें) प्रेम तनवाणी - 9685943880 साभार–डॉ लाल थदानी पूर्व अध्यक्ष राजस्थान सिन्धी अकादमी जयपुर।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) के पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण।

इस अवधि में प्रकाशित व्याकरणों की विस्तृत सूची ग्रियर्सन ने Languistic Survey of India] Vol- IX] Part 1 में दी है। यहाँ कुछ व्याकरणों का ही उल्लेख किया जायेगा। सन् 1801 में हेरासिम लेबेदेफ द्वारा लिखित 'A Grammar of the pure and mixed East Indian Dialects' लंदन से प्रकाशित हुआ। 17 इसमें लेखक ने अपनी जीवनी भी दी है। 'प्रेमसागर' के रचयिता लल्लू लाल का ब्रज भाषा व्याकरण सन् 1811 में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। जॉन शेक्सपियर का 'A Grammar of the Hindustani Language' लंदन से 1813 में छपा (पाँचवा संस्करण 1846 में और बाद में 1858 में) कैप्टन विलियम प्राइस का 'A new Grammar of the Hindustani Language' लंदन से 1827 में प्रकाशित हुआ। विलियम याटेस का 'Introduction to the Hindustani Language' कलकत्ते से 1827 में छपा, जिसका छठा संस्करण 1855 में प्रकाशित हुआ। इसका 1836 का संस्करण डेक्कन कॉलेज, पुणे के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इसकी भूमिका में लेखक का कहना है कि हिन्दुस्तानी मुस्लिम लोगों की भाषा है, जबकि हिन्दी हिन्दुओं की। रेवरेंड एम टी ऐडम का 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' कलकत्ते से 1827 में प्रकाशित हुआ। यह व्याकरण प्रश्न एवं उत्तर के रूप में बच्चों के लिए लिखा गया था। यह पुस्तक कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रही।

एण्ड्रू का Comprehensive synopsis of the eiements of Hindustani Grammar और सैन्फोर्ड आर्नोट का New self&instructing grammar of the Hindustani tongue yanu में क्रमशः 1930 एवं 1931 में प्रकाशित हुआ। Garcin de Tassy vkSj Joseph Heliodore ने मिलकर फ्रेंच भाषा में हिन्दुस्तानी और हिन्दवी दोनों के व्याकरण लिखे जो क्रमशः 1824 एवं 1847 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। जेम्स वेलन्टाइन के Grammar of Hindustani Language (1838) एवं Elements of Hindi and Braj Bhakha (1839) लंदन से प्रकाशित हुए। किसी अज्ञात लेखक का Introduction to the Hindustanee Grammar मद्रास से 1842 में छपा और दूसरा संस्करण 1851 में।

डंकन फोर्बेस ने 1845 में 'The Hindustani Manual' लिखा जो लन्दन से प्रकाशित हुआ। इसका 1858 का संस्करण 'Grammar of Hinduatani Language' डेक्कन कॉलेज, पुणे में उपलब्ध है। देवी प्रसाद का 'Polyglot Grammar and EÛercises in Persian] English]Arabic] Hindee] Oordoo and Bengali' कलकत्ते से 1854 में प्रकाशित हुआ।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण

सिपाही विद्रोह के बाद शिक्षा विभाग की स्थापना होने पर पं. रामजसन की 'भाषा-तत्त्व-बोधिनी' प्रकाशित हुई, जिसमें कहीं-कहीं हिन्दी और संस्कृत की मिश्रित प्रणालियों का प्रयोग किया गया। इसके बाद पं. श्रीलाल का 'भाषा चंद्रोदय' प्रकाशित हुआ, जिसमें हिन्दी व्याकरण के कुछ अधिक नियम थे। फिर सन् 1869 ई. में बाबू नवीनचंद्र राय कृत 'नवीन-चंद्रोदय' निकला, जिसमें 'भाषा चंद्रोदय' के बारे में टिप्पणी भी थी। इसके पश्चात् मराठी और संस्कृत व्याकरण के आधार पर और बहुत कुछ अंग्रेजी ढंग पर पं. हरिगोपाल पाध्ये ने अपनी 'भाषा-तत्त्व-दीपिका' लिखी। लेखक के महाराष्ट्रीय होने के कारण इस पुस्तक में स्वभावत: मराठीपन पाया जाता है।

पादरी॰ एथारिंगटन का प्रसिद्ध हिन्दी व्याकरण 'भाषा भास्कर' बनारस से 1873 में प्रकाशित हुआ, जिसकी सत्ता लगभग 50 वर्ष तक बनी रही। इसका सन् 1913 का संस्करण डेक्कन कॉलेज, पुणे में उपलब्ध है। पं. कामता प्रसाद गुरु ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' की भूमिका में लिखा है - 'अधिकांश में दूषित होने पर भी इस पुस्तक के आधार और अनुकरण पर हिन्दी के कई छोटे-मोटे व्याकरण बने और बनते जाते हैं। यह पुस्तक अंग्रेजी ढंग पर लिखी गई है। हिन्दी में यह अंग्रेजी प्रणाली इतनी प्रिय हो गई है कि इसे छोड़ने का पूरा प्रयत्न आज तक नहीं किया गया। मराठी, गुजराती, बँगला आदि भाषाओं के व्याकरणों में भी बहुधा इसी प्रणाली का अनुकरण पाया जाता है।'

सन् 1875 में राजा शिवप्रसाद का हिन्दी व्याकरण निकला। पं. कामता प्रसाद गुरु लिखते हैं - 'इस पुस्तक में दो विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि पुस्तक अंग्रेजी ढंग की होने पर भी इसमें संस्कृत व्याकरण के सूत्रों का अनुकरण किया गया है, और दूसरी यह कि हिन्दी के व्याकरण के साथ-साथ नागरी अक्षरों में उर्दू का भी व्याकरण दिया गया है। इस समय हिन्दी और उर्दू के स्वरूप के विषय में वाद-विवाद उपस्थित हो गया था और राजा साहब दोनों बोलियों को एक बनाने के प्रयत्न में अगुआ थे, इसीलिए आपको ऐसा दोहरा व्याकरण बनाने की आवश्यकता हुई। इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने बच्चों के लिए एक छोटा-सा हिन्दी व्याकरण लिखकर इस विषय की उपयोगिता और आवश्यकता सिद्ध कर दी।'

सन् 1876 में इलाहाबाद और कलकत्ते से S-H- केलॉग का 'A Grammar of the Hindi Language' प्रकाशित हुआ, जिसका परवर्द्धित तृतीय संस्करण 1938 में निकला। इसमें उच्च हिन्दी के साथ-साथ ब्रज एवं तुलसीदासकृत रामचरितमानस की पूर्वी हिन्दी एवं राजपुताना, कुमाउँ, अवध, रिवा, भोजपुर, मगध, संबंधी विस्तृत नोट भी हैं। तृतीय संस्करण का पुनर्मुद्रण कई प्रकाशकों ने किया है, जैसे– एशियन एजुकेशनल सर्विसेज एवं मुंशीराम मनोहर लाल, दिल्ली।

फ्रेड्रिक पिंकॉट द्वारा लिखित 'The Hindi Manual' लन्दन से 1882 में प्रकाशित हुआ, जिसमें साहित्यिक और प्रान्तीय दोनों प्रकार के हिन्दी व्याकरण शामिल किये गये। इसका तीसरा संस्करण 1890 में निकला। ड. शूल्ट्स का 'Grammatik der hinduistanischen Sprache' (हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण) जर्मन भाषा में स्मपत्रपह से 1894 में प्रकाशित हुआ।

एडविन ग्रीब्ज लिखित 'A Grammar of Modern Hindi' बनारस से 1896 में प्रकाशित हुआ। इस लेखक ने केलॉग के हिन्दी व्याकरण को एक मानक कृति बताया है। परन्तु सामान्य लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ग्रीब्ज ने अन्य व्याकरण रचा। इसका संशोधित संस्करण 1908 में प्रकाशित हुआ। सन् 1921 में इस लेखक ने पूर्णतः नये रूप से 'Hindi Grammar' नामक शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी व्याकरण लिखा, जिसमें ब्रज भाषा में कुछ नोट के सिवा हिन्दी के क्षेत्रीय अंतरों का कोई जिक्र नहीं किया गया। इसका पुनर्मुद्रण एशियन एजुकेशनल सर्विसेज ने 1983 में किया।

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी व्याकरण

सन् 1920 में पं. कामता प्रसाद गुरु द्वारा लिखित प्रथम बार एक प्रामाणिक एवं आदर्श 'हिन्दी व्याकरण' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने प्रकाशित किया। इसका षष्ठ पुनर्मुद्रण सन् 1960 में हुआ। सन् 2001 में इसका 22वाँ संस्करण प्रकाशित हुआ। इस व्याकरण के लेखक ने अपनी भूमिका में लिखा है - 'हिन्दी व्याकरण की छोटी-मोटी कई पुस्तकें उपलब्ध होते हुए भी हिन्दी में, इस समय अपने विषय और ढंग की यही एक व्यापक और (संभवतः) मौलिक पुस्तक है। इस व्याकरण में अन्यान्य विशेषताओं के साथ-साथ एक बड़ी विशेषता यह भी है कि नियमों के स्पष्टीकरण के लिए इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं वे अधिकतर हिन्दी के भिन्न-भिन्न कालों के प्रतिष्ठित एवं प्रामाणिक लेखकों के

ग्रंथों से लिये गये हैं। इस विशेषता के कारण पुस्तक में यथासंभव, अंध-परंपरा अथवा कृत्रिमता का दोष नहीं आने पाया है।'21 इस व्याकरण में छन्द, अलंकार, कहावतों और मुहावरों को स्थान नहीं दिया गया है। लेखक का कहना है कि यद्यपि ये सब विषय भाषा ज्ञान की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं, तो भी ये सब अपने-आपमें स्वतंत्र विषय हैं और व्याकरण से इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किसी भी भाषा का 'सर्वांगपूर्ण' व्याकरण वही है, जिससे उस भाषा में शिष्ट रूपों और प्रयोगों का पूर्ण विवेचन किया जाय और उनमें यथासंभव स्थिरता लायी जाय। 22 पं. कामता प्रसाद गुरु ने यह व्याकरण, अधिकांश में, अंग्रेजी व्याकरण के ढंग पर लिखा है। इस प्रणाली के अनुसरण का कारण बताते हुए वे लिखते हैं - 'इस प्रणाली के अनुसरण का मुख्य कारण यह है कि इसमें स्पष्टता और सरलता विशेष रूप से पायी जाती है और सूत्र तथा भाष्य दोनों ऐसे मिले रहते हैं कि एक ही लेखक पूरा व्याकरण विशद् रूप से लिख सकता है। हिन्दी भाषा के लिए वह दिन सचमुच बड़े गौरव का होगा जब इसका व्याकरण 'अष्टाध्यायी' और 'महाभाष्य' के मिश्रित रूप में लिखा जायेगा, पर वह दिन अभी बहुत दूर दिखायी देता है।'

हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर विद्वानों का ध्यान इसके स्वतंत्र अस्तित्त्व की खोज पर जाने लगा। पं. किशोरीदास वाजपेयी ने 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' (1949) लिखकर हिन्दी व्याकरण की स्वतंत्र सत्ता पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उनके शब्दों में - 'कोई व्याकरण अंग्रेजी के आधार पर लिखा गया है और कोई संस्कृत के आधार पर। हिन्दी के आधार पर हिन्दी का व्याकरण बना ही नहीं। तब तो उलझन होगी ही।'24 उनका 'हिन्दी शब्दानुशासन' (1957) एक महत्त्वपूर्ण व्याकरण ग्रंथ है। इसका पंचम संस्करण संवत् 2055 वि. (सन् 1998 ई.) में प्रकाशित हुआ।

डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद लिखित 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना' सन् 1959 में पटना से प्रकाशित हुआ, जिसका तेरहवाँ संस्करण 1977 में निकला। डॉ. प्रभाकर माचवे की इस व्याकरण ग्रंथ पर प्रतिक्रिया इस प्रकार है - 'हिन्दी में व्याकरण ग्रंथ, जो स्टैण्डर्ड माने जायें, बहुत थोड़े हैं। उन पुस्तकों में डॉ. प्रसाद की रचना मैं सभी दृष्टियों से सर्वांगपूर्ण समझता हूँ। स्व. रामचन्द्र वर्मा, स्व. कामता प्रसाद गुरु और आचार्य किशोरी दास वाजपेयी के बाद डॉ. प्रसाद का कार्य अत्यन्त मूल्यवान् और उपयोगी हुआ है।' इस व्याकरण का 23वाँ संस्करण 1993 में निकला, जिसका द्वितीय पुनःमुद्रण सन् 2001 में हुआ।

विदेशी वैयाकरणों के द्वारा लिखित हिन्दी व्याकरणों में डॉ. जालमन दीमशित्स का रूसी भाषा में लिखा '?????????? ????? ????' (हिन्दी भाषा का व्याकरण) मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ है। इसका द्वितीय संस्करण (दो खण्डों में - 373 . 300 पृष्ठ) मास्को से सन् 1986 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संस्करण का हिन्दी अनुवाद "हिन्दी व्याकरण" रादुगा प्रकाशन, मास्को से सन् 1983 ई. में प्रकाशित हुआ।

तुलनात्मक व्याकरण

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से एक ही परिवार की भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का युग शुरू हुआ जब राबर्ट काल्डवेल (1814-1891) की स्मारकीय कृति 'Comparative Grammar of the Dravidian Languages' (द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण) सन् 1856 में प्रकाशित हुई। इंग्लैंड निवासी जॉन chEl 1857 में इंडियन सिविल सर्विस में आये। भाषाओं के अध्ययन में ये बचपन से ही रुचि लेते थे। काल्डवेल की कृति देखकर इन्हें भारतीय आर्य भाषाओं पर वैसा ही काम करने की प्रेरणा मिली और लगभग 14 वर्षों तक इस विषय पर कार्य करते हुए उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'A Comparative Grammar of the ModernAryan Languages of India' तीन भागों में (प्रथम भाग-1872 में, द्वितीय भाग-1878 तथा तृतीय भाग 1879 में) प्रकाशित किया। भारतीय आर्य भाषाओं के तुलनात्मक विकास पर यह पहला कार्य है। इस विषय पर अभी तक कोई दूसरा कार्य नहीं हुआ है। 26 एक हजार से अधिक पृष्ठों के इस विस्तृत ग्रंथ के प्रारंभ में भारतीय आर्य भाषाओं के उद्‌भव और विकास पर 121 पृष्ठों की एक लम्बी-सी भूमिका है तथा आगे हिन्दी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया तथा बंगला की ध्वनियों तथा उनके संज्ञा, सर्वनाम, संख्यावाचक विशेषण तथा क्रियारूपों का संस्कृत से तुलनात्मक विकास दिखलाया गया है। मुंशीराम मनोहर लाल, दिल्ली ने इसका पुनर्मुद्रण किया है।

सैमुएल केलॉग (1839-1899) कृत 'A Grammar of the Hindi Language' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हिन्दी का यह प्रथम सुव्यवस्थित तथा विस्तृत व्याकरण है तथा आज भी कई दृष्टियों से सर्वोत्तम है। 27 इनमें हिन्दी के तत्कालीन परिनिष्ठित रूपों के साथ-साथ मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेरवाड़ी, जयपुरी, हाड़ात, कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली, कन्नौजी, बैसवाड़ी,

भोजपुरी, मगही और मैथिली आदि में भी रूप यथास्थान दिये गये हैं। वाक्य-रचना के विस्तृत प्रायोगिक नियमों के अतिरिक्त रूपों की व्युत्पत्ति तथा उनका विकास भी दिया गया है।

आगरा में एक जर्मन पादरी के घर जन्मे जर्मन विद्वान् रुडोल्फ हार्नले (1841-1918) का प्रसिद्ध ग्रंथ 'A Comparative Grammar of the Gaudian Languages' कलकत्ते से सन् 1880 में प्रकाशित हुआ। इसमें भोजपुरी का विस्तृत व्याकरण देने के साथ-साथ आधुनिक आर्यभाषाओं की काफी तुलनात्मक सामग्री दी गयी है। इसमें हिन्दी क्रिया रूपों में लिंग-परिवर्तन के नियम, विभिन्न रूपों का विकास, भाषायी मानचित्र तथा लिपियों में विकास का चित्र आदि भी हैं। एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, दिल्ली ने इसका पुनर्मुद्रण सन् 1991 में किया है।

भाषाशास्त्रीय अध्ययन

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी एवं उसकी बोलियों पर कई विद्वानों ने भाषाशास्त्रीय अध्ययन किया। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद ने 'Phonetic and Phonological Study of Bhojpuri' पर शोध कार्य किया (पी.एच.डी. थीसिस, लन्दन विश्वविद्यालय, 1950 अप्रकाशित)। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया का 'ब्रजभाषा और खड़ीबोली का तुलनात्मक अध्ययन' सन् 1962 में प्रकाशित हुआ। 28 हरवंशलाल शर्मा ने इसकी प्रस्तावना, पृ. 1 में लिखा है - 'डॉ. कैलाश भाटिया द्वारा प्रस्तुत 'ब्रज भाषा और खड़ीबोली का तुलनात्मक अध्ययन' हिन्दी भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में एक स्तुत्य तथा नवीन प्रयास है। ब्रज भाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन इस रूप में अभी तक प्रस्तुत नहीं हुआ था।'

हिन्दी व्याकरण का काल विभाजन

डॉ. अनन्त चौधरी ने हिन्दी व्याकरण के संपूर्ण विकास की लगभग 300 वर्षों की अवधि को निम्नलिखित पाँच कालखण्डों में विभक्त किया है।

आरम्भ काल - सन् 1676 - 1855 ई.
विकास काल - सन् 1855 - 1876 ई.
उत्थान काल - सन् 1876 - 1920 ई.
उत्कर्ष काल - सन् 1920 - 1947 ई.

नवचेतना काल – सन् 1947 ई. से वर्तमान काल तक।

डॉ. बीणा गर्ग ने हिन्दी व्याकरण की विकास यात्रा को तीन मुख्य कालों में वर्गीकृत किया है।

1. आदिकाल

अ – पूर्व आदिकाल – संक्रान्ति युग (सन् 1680 से पूर्व)।

आ – उत्तर आदिकाल – पाश्चात्य वैयाकरण युग (सन् 1680 से 1855 ई. तक)।

2. मध्यकाल

इ – पूर्व मध्यकाल – श्रीलाल युग (सन् 1680 से 1855 ई. तक)

ई – उत्तर मध्यकाल – केलॉग युग (सन् 1676 से 1920 ई. तक)

3. आधुनिक काल

उ – पूर्व आधुनिक काल – स्वतन्त्रता–पूर्व युग (सन् 1920 से 1947 ई. तक) – गुरु युग

ऊ – उत्तर आधुनिक काल – स्वातन्त्र्योत्तर युग (सन् 1947 से वर्तमान काल तक)

7

व्याकरण की परिभाषा

व्याकरण- व्याकरण वह विद्या है, जिसके द्वारा हमे किसी भाषा का शुद्ध बोलना, लिखना एवं समझना आता है। भाषा की संरचना के ये नियम सीमित होते हैं और भाषा की अभिव्यक्तियाँ असीमित। एक-एक नियम असंख्य अभिव्यक्तियों को नियंत्रित करता है। भाषा के इन नियमों को एक साथ जिस शास्त्र के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है उस शास्त्र को व्याकरण कहते हैं।

व्यक्ति और स्थान-भेद से भाषा में अंतर आ सकता है। इस प्रकार किसी भाषा का रूप निश्चित नहीं रहता। अज्ञान अथवा भ्रम के कारण कुछ लोग शब्दों के उच्चारण अथवा अर्थ-ग्रहण में गलती करते हैं। इस प्रकार भाषा का रूप विकृत हो जाता है। भाषा की शुद्धता और एकरूपता बनाए रखना ही व्याकरण का कार्य है।

वस्तुतः व्याकरण भाषा के नियमों का संकलन और विश्लेषण करता है और इन नियमों को स्थिर करता है। व्याकरण के ये नियम भाषा को मानक एवं परिनिष्ठित बनते हैं। व्याकरण स्वयं भाषा के नियम नहीं बनाता। एक भाषा भाषी समाज के लोग भाषा के जिस रूप का प्रयोग करते हैं, उसी को आधार मानकर वैयाकरण व्याकरणिक नियमों को निर्धारित करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि-

व्याकरण उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें किसी भाषा के शुद्ध रूप का ज्ञान कराने वाले नियम बताए गए हों।

कुछ उदाहरण देखें-

(1) सीता पेड़ पर चढ़ता है।

(2) हम सभी जाएगा।

पहले वाक्य में यह अशुद्धि है कि सीता स्त्रीलिंग के साथ क्रिया का रूप 'चढ़ती' होना चाहिए। वाक्य बनेगा - सीता पेड़ पर चढ़ती है। वाक्य संख्या 2 में कर्ता बहुवचन है, अतः वाक्य बनेगा - हम सभी जाएँगे। ये अशुद्धियाँ क्रिया-संबंधी हैं।

अन्य उदाहरण देखिए-

मार दिया को ने राम श्याम।

इस वाक्य से अर्थ स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि कर्ता, कर्म तथा कारक निश्चित स्थान पर नहीं हैं। 'राम ने 'याम को मार दिया।' वाक्य का अर्थ 'याम ने राम को मार दिया।' वाक्य के अर्थ से भिन्न है। वक्ता जो बात कहना चाहता है, उसे वाक्य में शब्दों का विन्यास उसके अनुरूप रखना होगा। इनसे संबंधित नियम हिन्दी व्याकरण में उल्लिखित हैं।

व्याकरण के अंग

भाषा के चार मुख्य अंग हैं- वर्ण, शब्द पद और वाक्य। इसलिए व्याकरण के मुख्यतः चार विभाग हैं-

(1) वर्ण-विचार

(2) शब्द-विचार

(3) पद-विचार

(4) वाक्य विचार

(1) वर्ण विचार या अक्षर- भाषा की उस छोटी ध्वनि (इकाई) को वर्ण कहते हैं जिसके टुकड़े नहीं किये सकते हैं।

जैसे- अ, ब, म, क, ल, प आदि।

इसमें वर्णमाला, वर्णों के भेद, उनके उच्चारण, प्रयोग तथा संधि पर विचार किया जाता है।

(2) **शब्द-विचार-** वर्णों के उस मेल को शब्द कहते हैं जिसका कुछ अर्थ होता है।

जैसे- कमल, राकेश, भोजन, पानी, कानपूर आदि।

इसमें शब्द-रचना, उनके भेद, शब्द-सम्पदा तथा उनके प्रयोग आदि पर विचार किया जाता है।

(3) **पद-विचार–** इसमें पद-भेद, पद-रूपान्तर तथा उनके प्रयोग आदि पर विचार किया जाता हैं।

(4) वाक्य-विचार– अनेक शब्दों को मिलाकर वाक्य बनता है। ये शब्द मिलकर किसी अर्थ का ज्ञान कराते हैं।

जैसे- सब घूमने जाते हैं।

राजू सिनेमा देखता है।

इनमें वाक्य व उसके अंग, पदबंध तथा विराम चिह्न आदि पर विचार किया जाता है।

हिन्दी व्याकरण की विशेषताएँ

हिन्दी-व्याकरण संस्कृत व्याकरण पर आधृत होते हुए भी अपनी कुछ स्वतंत्र विशेषताएँ रखता है। हिन्दी को संस्कृत का उत्तराधिकार मिला है। इसमें संस्कृत व्याकरण की देन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पं0 किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है कि 'हिन्दी ने अपना व्याकरण प्रायः संस्कृत व्याकरण के आधार पर ही बनाया है- क्रियाप्रवाह एकान्त संस्कृत व्याकरण के आधार पर है, पर कहीं-कहीं मार्गभेद भी है। मार्गभेद वहीं हुआ है, जहाँ हिन्दी ने संस्कृत की अपेक्षा सरलतर मार्ग ग्रहण किया है।'

ध्वनि और लिपि

ध्वनि– ध्वनियाँ मनुष्य और पशु दोनों की होती हैं। कुत्ते का भूँकना और बिल्ली का म्याऊँ-म्याऊँ करना पशुओं के मुँह से निकली ध्वनियाँ हैं। ध्वनि निर्जीव वस्तुओं की भी होती हैं। जैसे- जल का वेग, वस्तु का कम्पन आदि।

व्याकरण में केवल मनुष्य के मुँह से निकली या उच्चरित ध्वनियों पर विचार किया जाता है। मनुष्यों द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ कई प्रकार की होती हैं। एक तो वे, जो मनुष्य के किसी क्रियाविशेष से निकलती हैं। जैसे- चलने की ध्वनि।

दूसरी वे ध्वनियाँ हैं, जो मनुष्य की अनिच्छित क्रियाओं से उत्पन्न होती है, जैसे- खर्राटे लेना या जँभाई लेना। तीसरी वे हैं, जिनका उत्पादन मनुष्य के स्वाभाविक कार्यों द्वारा होता है, जैसे- कराहना। चौथी वे ध्वनियाँ हैं, जिन्हें मनुष्य

अपनी इच्छा से अपने मुँह से उच्चरित करता है। इन्हें हम वाणी या आवाज कहते हैं।

पहली तीन प्रकार की ध्वनियाँ निरर्थक हैं। वाणी सार्थक और निरर्थक दोनों हो सकती है। निरर्थक वाणी का प्रयोग सीटी बजाने या निरर्थक गाना गाने में हो सकता है। सार्थक वाणी को भाषा या शैली कहा जाता है। इसके द्वारा हम अपनी इच्छाओं, धारणाओं अथवा अनुभवों को व्यक्त करते हैं। बोली शब्दों से बनती है और शब्द ध्वनियों के संयोग से।

यद्यपि मनुष्य की शरीर-रचना में समानता है, तथापि उनकी बोलियों या भाषाओं में विभिन्नता है। इतना ही नहीं, एक भाषा के स्थानीय रूपों में भी अन्तर पाया जाता है। पर पशुओं की बोलियों में इतना अन्तर नहीं पाया जाता। मनुष्य की भाषा की उत्पत्ति मौखिक रूप से हुई। भाषाओं के लिखने की परिपाटी उनके निर्माण के बहुत बाद आरम्भ हुई। यह तब हुआ, जब मनुष्य को अपनी भावनाओं, विचारों और विश्वासों को सुरक्षित रखने की प्रबल इच्छा महसूस हुई।

आरम्भ में लिखने के लिए वाक्यसूचक चिह्नों से काम लिया गया और क्रमशः शब्दचिह्न और ध्वनिचिह्न बनने के बाद लिपियों का निर्माण हुआ। चिह्नों में परिवर्तन होते रहे। वर्तमान लिपियाँ चिह्नों के अन्तिम रूप हैं, पर, यह कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए, वर्तमान काल में हिन्दी लिपि में कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती। है इसके अपने लिपि-चिह्न हैं।

लिपि– मौखिक या कथित भाषा में ध्वनियाँ होती हैं, लिखित भाषा में उन ध्वनियों को विशेष आकारों या वर्णों द्वारा प्रकट किया जाता है। भाषा को लिखने का यह ढंग 'लिपि' है। हिन्दी भाषा की लिपि 'देवनागरी' है। अंग्रेजी 'रोमन लिपि' में तथा उर्दू 'पर्शियन' (फारसी) लिपि में लिखी जाती है।

साहित्य

साहित्य की परिभाषा अनेक प्रकार से दी गई है। सामान्यतः हम कह सकते हैं कि सुन्दर अर्थ वाले सुन्दर शब्दों की रचना, जो मन को आह्लादित करे तथा समाज के लिए भी हितकारी हो, साहित्य कहलाती है।

हिन्दी में कबीर, सूर, तुलसी, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि कवियों तथा प्रेमचंद जैसे कहानीकार और उपन्यासकार की रचनाएँ साहित्य के उदाहरण रूप में ली जा सकती हैं।

व्याकरण उस शास्त्र को कहा जाता है, जिसमें भाषा के शुद्ध करने वाले नियम बताए गए हैं। किसी भी भाषा के अंग प्रत्यंग का विश्लेषण तथा विवेचन व्याकरण (ग्रामर) कहलाता है। व्याकरण वह विद्या है, जिसके द्वारा किसी भाषा को शुद्ध बोला, पढ़ा और शुद्ध लिखा जाता है। किसी भी भाषा के लिखने-पढ़ने और बोलने के निश्चित नियम होते हैं। भाषा की शुद्धता व सुंदरता को बनाए रखने के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। ये नियम भी व्याकरण के अंतर्गत आते हैं।

किसी भी 'भाषा' के अंग प्रत्यंग का विश्लेषण तथा विवेचन 'व्याकरण' कहलाता है, जैसे कि शरीर के अंग प्रत्यंग का विश्लेषण तथा विवेचन 'शरीरशास्त्र' और किसी देश प्रदेश आदि का वर्णन 'भूगोल'। यानी व्याकरण किसी भाषा को अपने आदेश से नहीं चलाता घुमाता, प्रत्युत भाषा की स्थिति प्रवृत्ति प्रकट करता है। 'चलता है' एक क्रियापद है और व्याकरण पढ़े बिना भी सब लोग इसे इसी तरह बोलते हैं, इसका सही अर्थ समझ लेते हैं। व्याकरण इस पद का विश्लेषण करके बताएगा कि इसमें दो अवयव हैं - 'चलता' और 'है'। फिर वह इन दो अवयवों का भी विश्लेषण करके बताएगा कि (च् अ ल् अ त् आ) 'चलता' और (ह अ इ उ) 'है' के भी अपने अवयव हैं। 'चल' में दो वर्ण स्पष्ट हैं, परंतु व्याकरण स्पष्ट करेगा कि 'च' में दो अक्षर है 'च्' और 'अ'। इसी तरह 'ल' में भी 'ल्' और 'अ'। अब इन अक्षरों के टुकड़े नहीं हो सकतेय 'अक्षर' हैं ये। व्याकरण इन अक्षरों की भी श्रेणी बनाएगा, 'व्यंजन' और 'स्वर'। 'च्' और 'ल्' व्यंजन हैं और 'अ' स्वर। चि, ची और लि, ली में स्वर हैं 'इ' और 'ई', व्यंजन 'च' और 'ल'। इस प्रकार का विश्लेषण बड़े काम की चीज है, व्यर्थ का गोरखधंधा नहीं है। यह विश्लेषण ही 'व्याकरण' है।

व्याकरण का दूसरा नाम 'शब्दानुशासन' भी है। वह शब्दसंबंधी अनुशासन करता है, बतलाता है कि किसी शब्द का किस तरह प्रयोग करना चाहिए। भाषा में शब्दों की प्रवृत्ति अपनी ही रहती है, व्याकरण के कहने से भाषा में शब्द नहीं चलते। किन्तु भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार व्याकरण शब्दप्रयोग का निर्देश करता है। यह भाषा पर शासन नहीं करता, उसकी स्थितिप्रवृत्ति के अनुसार लोकशिक्षण करता है। व्याकरण के नियमों के ज्ञाता को वैयाकरण कहते हैं।

महत्व

1. यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्

2. स्वजनो श्वजनो माऽभूत्सकलं शकलं सकृत्शकृत्
3. (पुत्र! यदि तुम बहुत विद्वान नहीं बन पाते हो तो भी व्याकरण (अवश्य) पढ़ो ताकि 'स्वजन' 'वजन' (कुत्ता) न बने और 'सकल' (सम्पूर्ण) ' कल' (टूटा हुआ) न बने तथा 'सकृत' (किसी समय) 'शकृत्' (गोबर का घूरा) न बन जाय।)

संसार का सर्वप्रथम व्याकरण

संसार में सबसे पहले 'व्याकरण' विद्या का जन्म कहां हुआ?

संसार के भाषाविदों ने एकमत से स्वीकार किया है कि इस पृथ्वी पर उपलब्ध साहित्य में सबसे प्राचीन वेद है। ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम साहित्य है। जब कोई भाषा साहित्य की समृद्धि से जगमगाने लगती है, तब उसके व्याकरण की जरूरत पड़ती है। 'वेद' कैसा महत्वपूर्ण साहित्य है, यह इसी से समझा जा सकता है कि इसे इतने दिनों तक मनुष्य ने गले से लगाकर प्राणों की तरह इसकी रक्षा की है। उसके प्रत्येक मंत्र को यथास्थित रूप में कंठस्थ रखना और बहुत कुछ उसकी 'ध्वनि' सुरक्षित रखना सरल काम नहीं है। सूखे चने चबा चबाकर तपस्वी ब्राह्मणों ने वेदों की रक्षा की है। तभी तो वे बने रहे।

वेद जैसे महत्वपूर्ण साहित्य के व्याकरण की जरूरत पड़ी। व्याकरण के सहारे सुदूर देश प्रदेशों के ज्ञानपिपासु कहीं अन्यत्र उद्‌भुत साहित्य को समझ सकते हैं और अनंत काल बीत जाने पर भी लोग उसे समझने में सक्षम रहते हैं। वेद जैसा साहित्य देशकाल की सीमा में बँधा रहनेवाला नहीं है, इसलिए प्रबुद्ध 'देव' जनों ने अपने राजा (इंद्र) से प्रार्थना की-ष्हमारी (वेद-) भाषा का व्याकरण बनना चाहिए। आप हमारी भाषा का व्याकरण बना दें।' तब तक वेदभाषा 'अव्याकृता' थीय उसे यों ही लोग काम में ला रहे थे। इंद्र ने 'वरम्' कहकर देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली और फिर पदों को बीच से तोड़ तोड़कर प्रकृति प्रत्यय आदि का भेद किया-व्याकरण बन गया।

इस प्रकार व्याकरण विद्या का जन्म सबसे पहले भारत में हुआ।

व्याकरण भाषा का विश्लेषक है, नियामक नहीं

व्याकरण से भाषा की गति नहीं रुकती, जैसा पहले कहा गया है, और न व्याकरण से वह बदलती ही है। किसी देश प्रदेश का भूगोल क्या वहाँ की गतिविधि को रोकता बदलता है? भाषा तो अपनी गति से चलती है। व्याकरण

उसका (गति का) न नियामक है, न अवरोधक ही। हाँ, सहस्रों वर्ष बाद जब कोई भाषा किसी दूसरे रूप में आ जाती है, तब वह (पुराने रूप का) व्याकरण इस (नए रूप) के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं। तब इस (नए रूप) का पृथक् व्याकरण बनेगा। वह पुराना व्याकरण तब भी बेकार न हो जाएगा, उस पुरानी भाषा का (भाषा के उस पुराने रूप का) यथार्थ परिचय देता रहेगा। यह साधारण उपयोगिता नहीं है।

हाँ, यदि कोई किसी भाषा का व्याकरण अपने अज्ञान से गलत बना दे, तो वह (व्याकरण) ही गलत होगा। भाषा उसका अनुगमन न करेगी और यों उस व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने पर भी भाषा को कोई गलत न कह देगा। संस्कृत के एक वैयाकरण ने 'पुंसु' के साथ 'पुंक्षु' पद को भी नियमबद्ध किया, परंतु वह वहीं धरा रह गया। कभी किसी ने 'पुंक्षु' नहीं लिखा बोला। पाणिनि ने 'विश्रम' शब्द साधु बतलायाय 'श्रम' की ही तरह 'विश्रम'। परंतु संस्कृत साहित्य में 'विश्राम' चलता रहाय चल रहा है और चलता रहेगा। भाषा की प्रवृत्ति है। जब पाणिनि ही भाषा के प्रवाह को न रोक सके, तो दूसरों की गिनती ही क्या।

व्याकरण और भाषा विज्ञान

व्याकरण तथा भाषा विज्ञान दो शब्दशास्त्र हैं, दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न है, पर एक दूसरे के दोनों सहयोगी हैं। व्याकरण पदप्रयोग मात्र पर विचार करता है, जब कि भाषा विज्ञान 'पद' के मूल रूप (धातु तथा प्रातिपदिक) की उत्पत्ति व्युत्पत्ति या विकास की पद्धति बतलाता है। व्याकरण यह बतलाएगा कि (निषेध के पर्य्युदास रूप में) 'न' (नं) का रूप (संस्कृत में) 'अ' या 'अन्' हो जाता है। व्यंजनादि शब्दों में 'अ' और स्वरादि में 'अन्' होता है - 'अद्वितीय', 'अनुपम'। जब निषेध में प्रधानता हो, तब ('प्रसज्य प्रतिषेध' में) समास नहीं होता - अयं ब्राह्मणो नाऽस्ति', 'अस्य उपमा नास्ति'। अन्यत्र 'अब्राह्मणाः वेदाध्ययने मंदादराः संति' और 'अनुपमं काश्मीरसौंदर्य दृष्टम्' आदि में समास होगा, क्योंकि निषेध विधेयात्मक नहीं है। व्याकरण समास बता देगा और कहाँ समास ठीक रहेगा, कहाँ नहीं, यह सब बतलाना 'साहित्य शास्त्र' का काम है। 'न' से व्यंजन उढ़कर 'अ' रह जाता है और ('न' के ही) वर्णत्य से 'अन्' हो जाता है। इसी 'अन्' को सस्वर करके 'अन' रूप में 'समास' के लिए हिंदी ने ले लिया है - 'अनहोनी', 'अनजान' आदि। 'न' के ये विविध

रूप व्याकरण बना नहीं देताय बने बनाए रूपों का वह 'अन्वाख्यान' भर करता है। यह काम भाषा विज्ञान का है कि वह 'न' के इन रूपों पर प्रकाश डाले।

व्याकरण बतलाएगा कि किसी धातु से 'न' भाववाचक प्रत्यय करके उसमें हिंदी की संज्ञाविभक्ति 'आ' लगा देने से भाववाचक संज्ञाएँ बन जाती हैं–आना, जाना, उठना, बैठना आदि। परंतु व्याकरण का काम यह नहीं है कि आ, जा, उठ, बैठ आदि धातुओं की विकासपद्धति समझाए। यह काम भाषा विज्ञान का है। संस्कृत में ऐसी संज्ञाएँ नपुंसक वर्ग में प्रयुक्त होती हैं – आगमनम्, गमनम्, उत्थानत्, उपवेशनम् आदि। परंतु हिंदी में पुंप्रयोग होता है–'आपका आना कब हुआ?' हिंदी ने पुंप्रयोग क्यों किया, यह व्याकरण न बताएगा। वह अन्वाख्यान भर करेगा –'ऐसी संज्ञाएँ पुंवर्गीय रूप रखती है' बस! यह बताना भाषा विज्ञान का काम है कि ऐसा क्यों हुआ!

परकीय शब्दों का शासन

जब कोई भाषा किसी दूसरी भाषा से कोई शब्द लेती है, तो उसे अपने शासन में चलाती है – अपने व्याकरण के अनुसार उसकी गति नियंत्रित करती है। हिंदी का 'धोती' शब्द अंग्रेजी में गया, तो वहाँ इसे अंग्रेजी व्याकरण को शिरोधार्य करना पड़ा। प्रयोग होता है अंग्रेजी में – 'ब्रिंरग अवर धोतीज'। वहाँ 'धोती' का बहुवचन 'धोतियाँ' न चलेगा। 'ब्रिंग अवर धोतियाँ' प्रयोग वहाँ गलत समझा जाएगा।

इसी तरह अंग्रेजी का 'फुट' शब्द हिंदी ने लिया और अपने शासन में रखा। अंग्रेजी में 'फुट' का बहुवचन 'फीट' होता है, पर हिंदी में अंग्रेजी व्याकरण न चलेगा। प्रयोग होता है – 'चार फुट ऊँचाई', 'चार फीट ऊँचाई' गलत है। 'ऊँचाई' भी गलत है, 'उँचाई' शुद्ध है। 'निचाई उँचाई' होता है, 'नीचाई ऊँचाई' नहीं।

संस्कृत में इकारांत शब्दों के द्विवचन ईकारांत हो जाते हैं– 'कवि समागतौष्य हिंदी में ऐसा न होगा। 'दो कवि आए' कहा जाएगा। इसी तरह संस्कृत में 'राजदपंती समागतौ'। हिंदी में 'राजदंपति' सर्वत्र।

परकीय शब्दों को आत्मसात् करने की यह भी एक प्रक्रिया है कि अनमेल रूप को काट छाँटकर अपने मेल का बना लेना। हिंदी का 'गंगा जी' शब्द अंग्रेजी में गयाय पर 'गेंजिज' बनाकर। अंग्रेजी 'लैंटर्न' शब्द हिंदी ने लियाय पर 'लालटेन' बनाकर और 'हॉस्पिटल' को 'अस्पताल' बनाकर। 'हस्पताल' भी

हिंदी में गलत है। 'हॉस्पिटल' और 'डॉक्टर' जैसे रूप हिंदी को ग्राह्य नहीं। हिंदी का व्याकरण नियमन करेगा कि हिंदी में वह उच्चारण है ही नहीं, जिसे स्वर पर उल्टा टोप रख कर प्रकट किया जाता है। यहाँ 'मास्टर' की ही तरह डाक्टर' चलता है। हाँ, नागरी लिपि में अंग्रेजी भाषा लिखनी हो तब वह उलटा टोप काम आएगा – द डॉक्टर वाज फुलिश'। इसी तरह नागरी में फारसी जैसी भाषा लिखनी हो तो 'बाजार', 'जरूरत' आदि रूप रहेंगेय पर हिंदी में नीचे बिंदी न रहेगी – 'जरूरी चीजों के लिए बाजार है।' उर्दू के शेर आदि लिखने हों तो भी नीचे विंदी लग जाएगी। शब्दों का यह रूपनिर्धारण व्याकरण के वर्ण प्रकरण से होगा।

❐❐❐